ओ३म्

यजुर्वेद संहिता

प्रथमोऽध्याय

मूलमंत्र, उसका पदार्थ, भावार्थ
तथा लेखकीय टीका टिप्पणी सहित

ईशावास्य मिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्याँ जगत
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्

सम्पादक तथा प्रकाशक

वेदाभ्यासी पंडित देवनरायण पांडे
वेद प्रचार भवन ग्वालटोली
कानपूर

प्रथमावृत १००० प्रति मूल्य प्रति पुस्तक ≡)
बाहर ।)
कानपूरस्थ ला मुद्रालये मुद्रितः १०० प्रति का १५)

ला प्रेस, कानपुर।

निवेदन ।

आप जानते ही हैं कि वेद में न तो भूमिका है न मंगलाचरण लेखक ने भी इसी प्रणाली का अनुकरण किया है।

मेक्षमूलर महोदय तथा अन्य पंडितों ने जो वेदों की टीका करके अनर्थ किया है और जो भ्रम फैला दिया है उसको दूर करना ही इस शुभ कार्य्य के प्रारम्भ होने का कारण है।

प्रत्येक मास में १ अध्याय प्रकाशित की जावेगी आशा है कि वैदिक धर्म्म प्रेमी इसका प्रचार करना अपना कर्तव्य समझेंगे।

लेखक कोई संस्कृत का विद्वान नही है। पूर्व विद्वानों ने जो टीकायें की हैं उनसे सहायता लेकर लेखक ने इस कार्य्य का सम्पादन किया है आशा है कि विद्वान लोग मेरी त्रुटियों को मुझे पत्र द्वारा सूचित करके अनुग्रहीत करते रहेंगे

देवनरायण पांडे

वेद प्रचार भवन

ग्वालटोली कानपूर।

॥ ओ३म् ॥

यजुर्वेदसंहितायाम्

प्रथमोऽध्यायः ॥
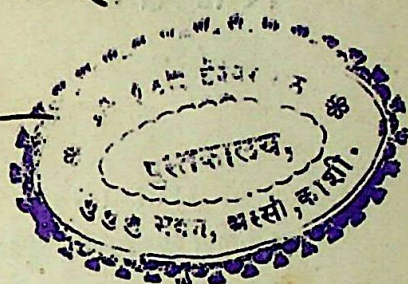
—:०:—

ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्प-यतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य (पशून्पाहि)। ॥ १ ॥

पदार्थः

(सविता) जगत का निर्माणकारक (देवः) शुभ तथा शान्तिप्रदायक (वः) हम सब लोगों को (वायवः) कारण को कार्य्य रूप में परिणित करने वाला (श्रेष्ठतमाय) उत्तमोतम कर्मों के निमित्त (कर्मणे) शुभ कर्मों के भाव से प्रेरित (प्रर्पयतु) संतुष्ट करे (इषे) समस्त पदार्थों से भूषित (ऊर्जे) उत्तम वस्तु के ग्रहण करने के लिये (भागं) शुभ कर्मों के प्रदान करने के लिये धन इत्यादि से समपन्न करे (त्वा उपरोक्त गुणों से संयुत (आप्यायध्वम) अपनी अधिक से अधिक उन्नती करो (इन्द्राय) अनेक प्रकार के वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (प्रजावतीः) अनेक संतान रखने वालों को, (अनमीवाः अयक्ष्माः) रोग इत्यादि से परे (अघ्न्या) अघ से रहित (प्रार्पयतु) प्रदान कीजिये (अघशंस स्तेन) पाप करने वाले चोर डाकू (माईशत) उतपन्न न हो (यजमानस्य) मनुष्य के वास्ते पशून गो महिषी अश्व इत्यादि जानवर (पाहि रक्षा कीजिये

(अस्मिन्) इस (गोपतौ) शान्ति से प्रेरित मनुष्यों के हृदय में गुप्त शान्ति को स्थापना और उसके सदृश समस्त बाहरी वस्तुओं में उसीका प्रतिबिंब (वहां) युक्त होकर (ध्रुवाः) अटल सिद्धान्त से विजय प्राप्त करने के पश्चात (स्यात) हो ।

भावार्थ ।

परमात्मा मनुष्यों को विधिपूर्वक संसार को चलाने के लिये सृष्टि के आदि में उपदेश देते हुये आदेश करता है कि हे मनुष्यों उत्मोत्तम गुणों को प्राप्त करके पुरुषार्थ करो । धर्मयुक्त पुरुषार्थ से ही ससार सब के लिये सुख का घर हो सकता है समस्त ज्ञान विज्ञान को धर्मयुक्त पुरुषार्थ से सीख कर ऐसी शुभ प्रेरणाओं से प्रेरित होकर सदा शुभ कर्मों में प्रवृत रहो आपस में मिल कर ऐसी परिपाटी बनालो जिससे देश में कोई चोर अथवा डाकू न रहै अपने वंश के पुत्र और कन्याओं को भी ऐसी ही धर्मयुक्त शिक्षा दो जिससे उनके हृदय का यथोचित विकाश हो जिससे वे संसार में प्रवेश करने से पहिले ससार के समस्त ज्ञान विज्ञान को सीख कर तत्ववेता बने । यदि तुम सब लोग इस पथ के अनुयाई होगें तो मैं अपने नियमानुसार तुम्हारे वास्ते सुखदाई प्रतीत हूंगा । जो पदार्थ मैंने तुम्हारे वास्ते निर्माण किया है वह सब प्रकार से परिपूर्ण है उसका ठीक ठीक प्रयोग करना उत्तम बुद्धि की प्रेरणा से ही हो सकता है ।

उत्तम बुद्धि के वास्ते मेरे उपासक बनो मेरे सिवाय अन्य की उपासना करना अपने को धोखे में डालना है ।

लेखक । मनुष्यों ! वेद ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है जितने ज्ञान आप जान सकते हैं वे सब वेदों ही से पैदा हुये हैं। ज्ञान प्राप्त करके अपने हृदय में अटल शान्ति जमाने के लिये आप सब लोगों को परमावश्यक है कि आप लोग वेदाध्ययन और इस का प्रचार करना अपना परम कर्तव्य समझें । यह ज्ञान एक देशी ज्ञान नहीं है यह प्रत्येक काल में प्रत्येक प्राणी के लिये हितकारी है धर्मयुक्त पुषार्थ करने से ही मनुष्य इस ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कर सकता है केवल एक परमात्मा ही हमारा उपास्य देव है । उसकी उपासना करना मनुष्य मात्र का परम धर्म है । सिवाय परमात्मा के और किसी की उपासना करना अपनी बुद्धि को नाश करके स्वयं अपने पांव में कुल्हाड़ी मारना है । इस वास्ते संसारिक विडम्बनाओं को छोड़ आप

नि ।कार परमात्मा की उपासना करें और सारे संसार में फैले माया जाल की पोल खोलने के लिये प्रेमपूर्वक उत्साह के साथ कटिबद्ध रहें । ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि विश्वधा असि परमेण धाम्ना दृꣳहस्व माह्व-र्माते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ २ ॥

पदार्थः

(वसोः) यज्ञ (पवित्र) उत्तम भावो से संशोधित (असि) है द्यौरसि) आकाश में है। पृथिव्यसि । पृथवी में है (मातरिश्वनोधर्मोसि) वायु को शुद्ध करने वाला है (विश्वधा) विश्व को धारण तथा पोषण करने वाला, (परमेण) उत्तम, । धाम्ना । स्थान से (दृꣳहस्व) अनेक प्रकार के सुखों को देने वाला (मा) मत (ध्नह्वा) त्याग कर (ते) तेरा (यज्ञपति) यज्ञ का मालिक ह्वार्षीत) न त्याग करे ॥ २ ॥

(भावार्थ) इस दूसरे मंत्र द्वारा परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि यज्ञ करना एक अत्यन्त पवित्र कार्य्य है । इसी यज्ञ द्वारा संसार का सारा कार्य्य नियमित रूप से चलता है । आकाश में इसका आस्तित्व है सूर्य्य की किरणों में इसका ही तेज है । पृथवी पर इसीसे अनुपम और विलक्षण गुण शोभायमान है । इस यज्ञ कर्म के प्रभाव से सारे भूमंडल में वायु चलती और शुद्ध होती रहती है । इसी यज्ञ ने सारे संसार को धारण किया है । सबका भरणपोषण इसी से होता है सारा जगत इसी पर अवलम्बित है। यह प्रत्येक स्थामें सुख का देने वाला है इस वास्ते हे मनुष्यों तुम इस यज्ञ को मत छोड़ना तुम स्वयं इसको नित्य प्रेमपूर्वक करते रहना तथा औरों को आदेश देना कि वे भी यज्ञ कर्म से विहीन न रहें ॥ २ ॥

लेखक । मनुष्यों । यज्ञ सब गुणों से युक्त है। सारे संसार में इसीका बोल बाला है। जहाँ देखिये वही इसका प्रभाव दृष्टिगोचर है। सूर्य्य पृथवी आकाश वायु सब इसी यज्ञ द्वारा नियमित रूप से चल रहे हैं ॥

यज्ञ शब्द का दूसरा नाम कर्म है और यहां यज्ञ शब्द से मतलब शुभ कर्मों से ही है। शुभ कर्मों द्वारा ही संसार नियमित रूप से चल रहा है। इस वास्ते यज्ञ अथवा शुभ कर्म करना अपना कर्तव्य समझो स्वयं करो और दूसरों से भी कराओ। कर्म हीन होने से मनुष्य मात्र की दुर्गति हो जायगी। शुभ कर्म जहां पर न होंगे वहां पर प्रत्येक वस्तु का कठिनता रहेगी न वहां पर सुख हो सकता है न शान्ति इस वास्ते शुभ कर्मों में सदा लगा रहना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्र-धारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

(पदार्थ) (वसोः) यज्ञ युक्त कर्म (शतधारं) जो सारे ब्रह्माण्ड को धारण किये हुये है। (पवित्रम) मलरहित संस्कारों से सब शुद्ध किया गया है। (देवा) शुभ कर्मों में प्रवृत्ति हुई अथवा उसके फल भोग करने वाले (सविता) सबको पैदा करने वाला (पुनात) पवित्र करे (वसोः) यज्ञ (पवित्रेण) पवित्र करने के निमित्त (शतधारेण) अनेक प्रकार को विद्याओं से परिपूर्ण सुप्वा । पवित्र और शुद्ध करना (काम अभिप्राय (अधुक्षः) विचार करके जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ। दूसरे मंत्र को लक्ष करके परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि जैसी यज्ञ क्रिया करने को मैंने तुम लोगों से कहा है उस प्रकार जो प्राणी प्रेम पूर्वक उत्तम भावों को अपने हृदय में ग्रहण करके यज्ञ करता रहेगा उसको मैं अनेक प्रकार के सुखों को अवश्य दूंगा जो लोग मलीन हृदय से इस कार्य्य कर्म्म के करने में फलीभूत अथवा तत्पर न होंगे उन आलसी और पापात्माओं को सुख से वंचित होना पड़ेगा क्योंकि मैं सारा कर्म्म न्याय के साथ करता हूं। जिसका जैसा कर्तव्य होगा वह उसी प्रकार के फल का भागी होगा ॥ ३ ॥

लेखक। मनुष्यों तुमको उचित है कि सदैव पुरुषार्थ करो। परमात्मा ने तुम्हारे सुख के लिये सारे पदार्थ बनाये है। प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई विशेष गुण है। उसको तत्त्व वेत्ता बनकर समझो। जब तक आपको यह नहीं मालूम होगा कि किस वस्तु में कौनसा गुण है और वह किस प्रकार से संसार के व्योहार में

लाई जा सकती है तब तक वह मनुष्य उस पदार्थ का उचित उपयोग नहीं कर सकता इस वास्ते पुरुषार्थ से पहिले प्रत्येक वस्तु का गुण और उपयोग विधि सीखो फिर अपने अनुभव को कार्य्य रूप में परिणत करो यही सुख का सच्चा मार्ग है। यदि ऐसा न करोगे तो सारे पदार्थों के रहते हुये भी तुमको किसी बात का सुख न होगा आलस कभी मत करो। आलस सब कष्टों की जड़ है। इस से संसार का नाश हो जायेगा। इसको तुरन्त छोड़ो और अपने कर्त्तव्य पथ पर सदा हर्ष और उत्साह के साथ चलते रहो। ॥ ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष॥ ४ ॥

पदार्थ । (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयु प्रदान करने वाला (विश्वकर्मा) पिण्डब्रह्माण्ड की रचना करने वाला (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (भाग) यज्ञ में किये हुये भाग को (सोमेन) विशुद्ध औषधियों और वनस्पतियों द्वारा बनाये हुये रसों से भरा हुआ संसार का समस्त आनन्द (आतच्मि) मैं अपने में धारण करता हूं (हव्यम) हव्य इत्यादि यज्ञ के पदार्थों को (रक्ष) रक्षा करें

भावार्थ-ब्रह्मचर्य्यावस्था, गृहस्थाश्रम तथा उसके बाद मनुष्य मात्र की सुख सामग्री के लिये उस परमात्मा ने सबका आदेश दिया है कि वह मुझे सारे संसार का कर्ताधर्ता माने। प्रभावयुक्त सारे संसार में मैं उन लोगों को पूर्णायु प्रदान करके उनको नित्य ही धारण करने वाला होता हूं। तुम सब लोग अपने हृदय में इसीको धारण करो मैं उस परमात्मा के वास्ते सारी यज्ञ क्रियायें करता हूं वही हमारी सब प्रकार से रक्षा करेगा। और नित्य वही रक्षक है।

लेखक। मनुष्यों। पहले तीन मन्त्रों के तारतम्य से यह बात भली भांति इस चौथे मन्त्र में विदित करदी गई है कि इस सारे संसार को बनाने वाला, धारण करने वाला, तथा उसको नियमित रूप से चलाने वाला वही एक परमात्मा है। उसीकी सत्ता सब में विराज रही है। उसीके आदेशानुसार आप सब लोगों को सांसारिक तमाम यज्ञादिक क्रियायें करके उसके उचित भावों को सेवन करना चाहिये। जब आप यह बात अपने हृदय में धारण करेंगे तो फल स्वरूप वह परमपिता आपकी रक्षा अवश्य करेगा। ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि रिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्य मुपैमि ॥ ५ ॥

पदार्थ (व्रतपते) शुभ कर्मों के नित्यान्त करने की प्रतिज्ञाओं को पालन करने में, (अग्ने) सत्य तथा तेजस्वी पदार्थों की रचना में, (अनृतात) जो झूठ नहीं है (चरिष्यामि) करूंगा (इदम्) इसी को (राध्यताम) अच्छी प्रकार सिद्ध करने का यन्त्र (मे मेरे (तत) उस शुभ व्रत को (उपैमि) जानते तथा आचरण में लाने का प्रयत्न करता हूं, (शकेयम्) मुझ में सामर्थ्य होवे । ५ ।

भावार्थ–सत्य ओर कर्मों के संचार का मूल कारण होने से परमात्मा सत्य व्रत का स्वामी माना जाता है उसी की आज्ञानुसार हमको संसारिक कर्मों में सत्याचरण करना चाहिये सत्य में लीन होकर सबको तेजस्वी पदार्थों में अपना प्रवृति सदैव करके उसके विमुख झूंठ आचरण से अपने को बचाने को अपने में सदा शक्ति रखना चाहिये । तमाम उचित वस्तुओं के मूल तत्त्व को समझ कर उसके योग करने की क्रिया में भली भांति दक्ष होना चाहिये ।

लेखक–मनुष्यो जिस प्रकार परमेश्वर हमेशा सत्य व्रत का पालन करके उसका स्वामी है उसी प्रकार अगर आप भी सत्य व्रत का पालन करेंगे तो आप भी सारे संसार के बाह्य पदार्थों के स्वामी हो सकते हैं । आप को यत्न करना चाहिये कि आप में असत्य से बचने की शक्ति हमेशा बना रहे । क्योंकि इस शक्ति द्वारा ही आप ससार में जिस काम को चाहेंगे उत्तमता से कर सकते हैं ऐसे शुभ तथा सत्यव्रत के पालन करने में आपको सदैव तत्पर रहना चाहिये इसीसे आपका इस संसार में कल्याण होगा और परलोक में आपको अविचल शान्ति मिलेगी ॥ ५ ॥

कस्त्वा युनक्ति सत्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मैं त्वा युनक्ति कर्मणेवाँ वषायवाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ । (क) कौन (त्वाँ) तुझको उपास्य देव समझने की (युनक्ति) आदेश देता है (सः) वह ही परमेश्वर (त्वा) तुमको अनेक प्रकार की शुभ प्रवृत्तियों में लगने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है । (कस्मै) किस बात के

लिये युनक्ति आज्ञा देता है ? (तस्मै) उसी व्रत के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है। वेपाय शुभ गुणो के लिये (वाम) हम सबको।

भावार्थ–तुम सब लोगों को शुभ कर्मों में कौन प्रवृत करता है ? और उस को ऐसा करने के लिये उसका प्रयोजन क्या है ? तमाम लोगों को शुभ कर्मों में प्रवृत कराने वाला वही एक परमेश्वर है। उसका ऐसा करने में केवल एक मात्र प्रयोजन यह है कि वह सबको शुभ कर्मों में लगाये रहै।

लेखक-इस छठे मंत्र में परमात्मा स्वयं प्रश्न करता है और उत्तर देता है। यानी वह आप ही आप पूछता और जवाब देता है कि हे मनुष्यों अगर तुमसे कोई यह पूछे कि तुम लोगों को शुभ कर्मों में कौन प्रवृत कराता है तो उत्तर दो वही परमात्मा। अगर तुमसे कोई यह पूछे कि ऐसा करने में परमात्मा का प्रयाजन क्या है तो उसको यह उत्तर दो कि गुण कर्म स्वभाव से ही सबको उत्तम २ कार्यों में सदा लगाये रखना चाहता है इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा प्रयाजन उसका नहीं है वह नित्य प्रति चाहता है कि सब लोग उत्तम गुणों से भूषित रहै। ॥ ६ ॥

प्रत्युष्ठꣳरक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्ध्वन्तरिक्ष मन्वेमि ॥ ७ ॥

पदार्थ (प्रत्युष्ट) निश्चय रूप से (रक्षः) रक्षा करूं (अरातयो) आततायियों को जो धर्म और शुभ कर्म से सदैव दूर रहते हैं (निष्टप्तरक्षो) अवश्यमेव नाश कर दूं। अन्तरिक्षम) सुख से भरे हुये वायु मण्डल का उरू अविचल विश्राम तथा शान्ति सुख को प्राप्त करने के लिये, (येन्वेमि) मैं जिस प्रकार लगा रहता हूं।

भावार्थ–परमात्मा इस मंत्र में अपना उदाहरण देता हुआ सबको आदेश देता है कि हे मनुष्यो जैसे मैं सदा दुष्ट गुन कर्मस्वाभाव वाले मनुष्यो को दंड देता अपना कर्तव्य समझता हूं और जैसे उत्तम प्रकृति वाले सज्जनो की रक्षा करता रहता हूं उसी प्रकार तुम सब लोग अपने बुद्धि से विचार कर हमेशा दुष्टों और धर्म हीन मनुष्यों को दड देने में और साधु पुरुषों की रक्षा करने में लगे रहो॥

लेखक—जो लोग प्रकृति नियम से विपरीति चलते है उनका सदैव नाश होता है। और उसके पालन करने वाले सदैव अपने बल से सदा सुरक्षित रहते हैं। प्रकृति का नियम ही उनके अनुकूलता और प्रतिकूलता के विचार से उनको रक्षा तथा नाश किया करता है। इस वास्ते इस मंत्र द्वारा परमात्मा सारे मनुष्यों को आदेश देता है कि वे सदैव प्रकृति नियम पालन करें और सबसे करावें जो इसके विरुद्ध आचरण करे उसको पापी और विधर्मी समझ कर सदा के लिये उसका परित्याग कर दें क्यों कि ऐसो प्रकृति वाले मनुष्यों का संग करने से उनका साथी भी उसके अवगुणों में फस जाता है ॥ ७ ॥

धूरसि धूर्व्व धूर्वन्तं धूर्व्व तं योऽस्मान्धूर्व्वति तं धूर्व्व यं वयं धूर्व्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥

पदार्थ (धूः) दूषण रहित नित्य स्वयं प्रयोग द्वारा सारी सृष्टि क नियमित रूप से चलाने वाले (असि) हैं (देवानाम) शुभकर्मों में नित्य प्रवृति रहने वाले विद्वान सज्जनों को (वह्नितमम) मर्य्यादा के सम्पादन करने के निमित्त (सस्नितम) प्रकृति के नियमित विभूतियों द्वारा विज्ञानिक रीति से शुद्ध किया हुआ (पप्रितमम) परा और अपना दोनों प्रकार की विद्यायों से पूर्ण किया हुआ (जुष्टतमम) विद्वानों से प्रतिपादित और योगी जनों द्वारा योग क्रिया से भूषित उत्तम भक्ति के साथ भली भांति संचालन करने क वास्ते (देवहूतमम) अस्तुति करने वाले (यः) साधारण मनुष्य (अस्मान) हम लोगों को शुभ पथ पर प्रदर्शन करने के हेतु (धूर्वति) कष्ट प्रदान करता है (यम) पापी जनों को वयम हम लोगों को (धूर्वामः) संताप देता है (तम्) उसको (धूर्व) सीधे और सुमार्ग पथ पर लाने के लिये यत्न करना (धूः) सब प्रकार के अहं कारों का नाश करके संसार में ज्ञान प्रकाश करने वाले (असि) हो ॥

भावार्थ—परमात्मा इस मंत्र द्वारा सांसारिक मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेश देता है कि वे सदा मुझमे विश्वास करें और उनको नित्य प्रति इस बात का गुमान होना चाहिये कि मैं सदैव दुष्ट जनों को उनके किये हुये बुरे कर्मों का फल देता हूं और अपनो न्याय को संसार में प्रतिपादित करने के

लिये उनको विधिवत दंड देता हूं। इसी प्रकार साधुजनों की रक्षा करके संसार में उत्तम कर्मों और शुभ वृत्तियों का प्रचार करता रहता हूं। यह मेरा अटल न्याय है। इस पर प्रत्येक मनुष्य को भरोसा रखना चाहिये दुष्टों का दमन करना और सज्जनों की रक्षा करना मेरा नित्य काम है। समस्त विद्याओं का देने वाला सुख शान्ति से संसार के आच्छादित करने वाला विद्वानों को स्तुति योग्य बनाने वाला केवल मैं ही हूं। कला कौशल का जो अद्भुत चमत्कार मेरे प्रभाव से सारे संसार को दृष्टिगोचर होरहा है उसका मूल कारण मुझको ही समझो कला कौशल की बाहुल्यता और उसका प्रचार तुम्हारे सांसारिक कामों के लिये अत्यन्त सुखदाई होगा। अग्नेय शास्त्रों तथा वायु यानों की प्रदर्शनी और उनको यथोचित संग्रह तथा उनका नियमित रूप से प्रयोग तुम्हारे लिये हितकारक है।

लेखक—इस मन्त्र के आधार पर हमें दुष्ट मनुष्यों से भयभीत न होना चाहिये उनकी दुष्टता से शंकित होकर हमें अपनी सज्जनता के पथ पर से कभी विचलित न होना चाहिये क्यों कि परमात्मा स्वयं दुष्टों का नाश करके साधु सज्जनों की रक्षा करता है वह हमे यह भी उपदेश देता है कि तुम लोग विज्ञान विद्या को भली भांति मनन करके तत्व के मूल को पूर्णतया पहचानो और पदार्थ के परिमाणुओं को पृथक त्वा प्रथक त्व मिश्रणा सीख कर उनसे उपयोगी कला कौशल संबन्धी व्योहारों का प्रचार करो अग्नेय शस्त्र बनाकर सदा अपने पास रक्खो और आवश्यकता पड़ने पर उससे रक्षा करो इसके द्वारा जल थल और आकाश में शीघ्रता के साथ घूमते रहो। (वायुयान) (हवाई जहाज) बनाओ [पोत] जहाज़ इत्यादि बनाओ। ध्यान रक्खो कि ये सब सारे गुण तुम मुझसे ही सीख सकते हो। तुम्हारे कल्याणार्थ हो मैंने प्रकृति में ऐसे २ गुण भर दिये हैं कि तुम उनको सीख कर अपना यथोचित लाभ कर सकते हो ॥९॥

अन्हुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपति र्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳरक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ १० ॥

पदार्थ (हविधातं) समस्त प्रकार की विशुद्ध औषधियों और वनस्पतियों से मिश्रित हवन करने योग्य पदार्थ (अहुतम्) जिसे करने में

किसी प्रकार का छल न हो [असि] वह होवे । [माह्वा] हराम होकर उसका त्यागन मत करो (दृहस्व) नित्य प्रति बढ़ाते रहो (ते) तुम्हारा (यज्ञपति) यजमान (पंच) पांच (पच्छत्ता) हवन करते रहो । (त्वा) हवन की सामग्री को (विष्णुः) सूर्य्य भगवान (अपहतम्) आच्छादित किया हुआ (रक्षाः) रक्षा करता हो (उरूवाताय) वायु से सारी गंदगी को नाश करने के लिये, (क्रमताम्) सूक्ष्मरूप से उसके [हवन किये हुये] परिमाणुओं को आकाश में अपनी आकर्षण शक्ति से खींच लेता है।

भावार्थ—जब मनुष्य अग्नि के विशुद्ध औषधियों और वनस्पतियों द्वारा हवन करता है तो उससे वायु शुद्ध होती है और सूर्य्य भगवान अपने तेज से हवन किये गये पदार्थों को आकाश में खींच लेता है इस वास्ते सबको चाहिये कि वायु की शुद्धी के लिये वह नित्य हवन करैं। उसे कभी न छोड़े। नित्य प्रति बढ़ाने का प्रयत्न करै। स्वयं करै और अपने आस पास के लोगों और अपने यजमानों से करावे।

लेखक—परमात्मा आदेश देता है कि प्रत्येक मनुष्य जो गन्दगी मल मूत्र त्याग करके बढ़ाता रहता है और जिससे वायु विषैली होती जाती है। उनको चाहिये कि हवन के द्वारा शुद्ध करैं प्रकृति द्वारा जो गन्दगी फैलती है उसे प्रकृति स्वयं रसपूर्ण पदार्थों का सूर्य्य देव की अग्नि में हवन करके अपना गन्दा किया हुआ दोष पूरा कर देती है। अगर मनुष्यों ने भी अपनी फैलाई हुई गन्दगी को हवन द्वारा शुद्ध कर दिया तो वायु अत्यन्त शुद्ध होजाय इससे इस मंत्र में परमात्मा सबको यज्ञ करने का आदेश देता है। यज्ञ करना सबका परम धर्म है ॥९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो-हस्ताभ्याम् अग्नये जुष्टङ्ग्रहणाम्यग्नीषोमाभ्याम जुष्ट-ङ्गृह्णामि ॥ १० ॥

पदार्थ (देवस्य) प्रकाश और जगत पैदा करने वाला तथा उसको नियमित रूप से चलाने वाले ईश्वर के (सवितः) जगत को निर्माण करने वाला परमात्मा जो कि सत्त चित्त तथा आनन्द ३ गुणों से भूषित है। और जितने अनादि प्रकृति से सारे संसार को रचा है (प्रसवे) उस संसार में

(अश्वनी) प्रकाश देने वाले देवताओं अर्थात् चन्द्र और सूर्य्य तथा और छोटे २ नक्षत्र जो अपनी दिव्य रोशनी तथा औरों से पाई हुई रोशनी से सारे संसार को दिन रात प्रकाश दिया करते हैं। (बाहुभ्याम) शक्ति और प्राक्रमयुत पुरुषार्थ से (हस्तभ्याम) हाथों से अथवा ग्रहण करने तथा त्याग करने के निमित्त कारण से (पूष्णः) प्राणः (अग्नेय) अग्नि अथवा तेज से संचालिक किये हुये शस्त्र जैसे बन्दूक इत्यादि (जुष्टम) सुयोग आत्माओं के सुचार रूप से संग्रहीत की हुई बातों और उनकी पुष्टी करण शक्तियों के अधार को। (त्वां) उस बात को (ग्रहामि) ग्रहण करता हूं (लोग्नीषोमाभ्याम अग्नि और षोम अथवा तेज दे दिव्य तथा रस सयुक्त पदार्थों से। (जुष्टम ; विद्वानों जनों के मनो-वांछित फलों से। (ग्रहामि) मैं ग्रहण करता हूं।

भावार्थ—इस मत्र में परमात्मा आगे होने वाले ऋषि मुनियों तथा विद्वानों को आदेश देता हैं कि जो पदार्थ मैंने बनाये हैं उनके गुणों को तुम लोग सीखो और सीखने तथा विधिवत जानने और अनुभव प्राप्त करने के बाद उसे संसार के साधारण मनुष्यों में प्रचार करो सूर्य्य चंद्र अग्नि जल इत्यादि में क्या २ गुण है। दो बस्तुओं के संयोग से उनके गुणों में कौन सी विशेषता आजाती है इसे अच्छी भांति जानकर रसायन शास्त्र, योग शास्त्रइत्यादि की प्रवृतियें सदैव संसार को लगायें॥

लेखक—रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, इन तीन गुणों की वि भिन्न तार तम्यता से संसार के सारे पदार्थ निर्माण किये गये है।

जिस बस्तु में। जो गुण अधिक मात्रा में पाया जाता है उस में उसी का भाव होता है और उसी भाव के अनुसार वह पदार्थ वर्गी करण के समय किसी बिशेषावस्था में पाया जाता है। प्रत्येक बस्तु में कोई न कोई गुण अवश्य रहता है दो बस्तुओं या दो से अधिक वस्तुओं का जब मेल होता है तो एक तीसरा पदार्थ बन जाता है जो गुण कर्म स्वभाव में अपने पहले वाले पदार्थों से सर्वथा विपरीति रहता है विद्वानों को उचित है कि वे इस रसाइन के क्रिया को भली भांति मनन तथा अनुभव करें और संसार के कल्याणार्थ उसका प्रयोग तथा प्रचार करें। ऐसा करने से मनुष्य अपने कार्य्य को उत्तमता और सुगमता से कर सकता है॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषन्दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ॥ ११ ॥

पदार्थ (भूताय) प्राणी मात्र के लिये (आरातये) दुख दारिद्र विनाशार्थ (न) निषेध बाचक (उपस्थे) संसार के पदार्थों से जो भाव और गुण मिले हुये हैं उनके मूल स्वरूप में (आदित्या) प्रकाश देने वाला पदार्थों की अविर्भाविता (सादियामि) मैं जमाता तथा पुष्ट करता हूं । (पृथिव्या मि) पृथिवी पर (दुर्य्या) अपने २ स्थानपर । (नाभौ) पृथिवी के मध्य भाग में जहां से आप लोग अपनी लौकिक शक्ति का विधि पूर्वक संचालन करसकें । (स्वः) सुचित पदार्थों के निमित्त (अभिविख्येषम्) उसका अच्छी तरह अन्वेषण करके (अन्वेमि) मैं बास करता हूं (अग्ने) हे परमेश्वर (हव्यम्) सेवन करने योग्य पदार्थों की (रक्षः) सदा सुरक्षित रखिये (दृंहतम्) सीखैं और अनुभव करैं

(उरू) अनेक प्रकार से । (अन्तरिक्षम) जिस जगह वायु तेज तथा अन्य आवश्यक बातों के लिये पूर्णतया विकाश सिद्धि सु अवकाश सुगमता के साथ प्राप्त हो ।

भावार्थ—इस मंत्र द्वारा परमात्मा मनुष्यों को उपदेश देता है कि इस विस्तृत पृथिवी पर जिस पर मैंने तुम लोगों को सुख तथा आनन्द के लिये अनेक प्रकार की वस्तुओं को बनाया है । उस पर तुम लोग निवास स्थान बनाकर रहो तुम्हारा निवास स्थान प्रत्येक ऋतु के अनुसार बनाना चाहिये वस्तुओं के गुणों का साधन और तपासन करो उनकी खोज में नित्य ही लगे रहो और यह जानो कि अनेक प्रकार की विभिन्न विभूतियों का उत्पादन मुझसे ही हुआ है सदा प्रत्यक वस्तु का वीज प्रति पिता हूं और ऐसा समझ कर तुम लोग नित्य ही मुझे अपना उपास्य देव समझो और उपासना किया करो ॥ ११ ॥

लेखक - मनुष्यों को चाहये कि वह ऋतू काल का विचार करके अपने लिये एक घर बनाले जहां से वह अपने शक्तियों का संचालन करसके क्योंकि बिना केन्द्री भूत हुये कोई भी कार्य्य उत्मता के साथ प्रति पादित नही होसकता घर बनाने के पश्चात उसे चाहये कि वह अपने आस पास की जड़ी बूटियों को पहचानने का प्रयत्न करैं क्यों कि उनमें अनेक प्रकार के गुण भरे हैं । उनको

जानना अत्यन्त आवश्यक है। पदार्थों के गुणों का अन्वेषण करते समय इस बात को न भूल जाना चाहिये कि प्रत्येक गुण मूल तत्व में ही प्रतिपादित और ईश्वर द्वारा स्थापित है क्योंकि अगर यह भाव हृदय से उठ जायेगा तो चित्त में अहंकार की उत्पत्ति होती है कि अमुक कार्य्य मैंने किया वास्तव में ऐसी बात नहीं है क्योंकि हम तो गेहूं का एक दाना भी अपनी शक्ति से नहीं बना सकते परमात्मा ही को सब का रचयिता समझ कर गुणों का उपयोग करना चाहिये अन्यता कृतघ्नता का दोष लगेगा ॥११॥

पवित्रस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो अग्रगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञन्नयताग्रे यज्ञपतिꣳसुधातु यज्ञपतिंदेवयुवम् ॥ १२ ॥

पदार्थ (प्रसवे) उत्पन्न किये हुये पदार्थों के तल्लीनता में मग्न होकर संसार में रहने वाले लोगों के हृदय में । (पवित्रेण) पवित्रता के साथ (अच्छिद्रेण) दोष रहित (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों द्वारा, (वैष्णव्यौ) यज्ञ के हवन किये हुये पदार्थ (पवित्रे) पवित्र करने में सहायक (स्थः) हो (अग्रेगुवः) आगगामी हो (अग्रेपुवः) पहले से जो पृथिवी में वर्तमान और विद्यमान है। (देवीः) सुन्दर गुणों से भूषित (आपः) जल तथा और संसार के विशुद्ध द्रवित पदार्थ (नयत) हवन करके लाभ पहुचाओ और गंदगी को दूर करो (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (सुधातुम्) सुन्दर धातु (यज्ञपतिम्) यज्ञ के स्वामी (देवयुवम्) उत्तमगुण वालों को (उत्पुनामि) मैं पवित्र करता हूं

भावार्थ—इस मंत्र द्वारा परमात्मा मनुष्यों को नित्य प्रति यज्ञ करने के विधान का आदेश देता है। वह कहता कि मनुष्यो अपने स्वभाव से उत्पन्न हुई गन्दगी को फैला कर वायु मण्डल विषैला बनाते रहेंगे इस वास्ते उनको चाहिये कि वे विशुद्ध और सुगंधित पदार्थों का हवन अग्नि मे किया करें हवन किया हुआ पदार्थ संक्षिप्त होकर सूर्य्य की किरणों में मिल जाता है और इस तरह से थोड़ा सा पदार्थ भी अधिक से अधिक रूप में फैल कर वायु को शुद्ध करता रहता है। जल इत्यादि में कोई गन्दगी नहीं आने देता॥

लेखक—उपरोक्त कारण से यह बात भली भांति सिद्ध हो गई है कि प्रत्येक मनुष्य वायु को गन्दा करता है इस वास्ते यह प्रत्येक पुरुष का परम धर्म होना चाहिये कि वह कम से कम उतनी वायु को अवश्य शुद्ध करे जितनी वह गन्दी करता है। अग्नि से हवन किये हुये पदार्थ सूर्य्य की किरणों में प्रवेश कर जाते हैं और इस क्रिया से सदैव वायु शुद्ध हुआ करती है। इस वास्ते हवन सबको करना चाहिये ॥१२॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वम् वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिताः स्थ। अग्नयेत्वा जुष्टम्प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याम् त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धः पराजघ्नुरिदंवस्तच्छुन्धामि ॥१३॥

पदार्थ (इन्द्रः) सूर्य्य (वृत्रतूर्य्ये मेघ मंडल मे (युष्मा) जल को (अवृणति पहुंचाता तथा स्थिर करता है (इन्द्रम) वायु मण्डल को (अवृणध्विम) स्वीकार करता है (यूयम) तुम लोग (प्रोक्षिता, सींचने के वास्ते जल को धारण करके (स्थ) होवे (दैव्याय) शुद्ध करने के लिये (कर्मणो) कर्म से (देवयज्याये) शुभ गुणों के लिये (अग्नेय) संसारिक अग्नि से। (जुष्टम) उचित रूप से सेवन किया हुआ (प्रोक्षामि) मैं करता हूं (शुन्धवम) अच्छी प्रकार से शुद्ध हुआ (यत) जिस कारण से (शुन्धामि) पूर्ण करता है।

भावार्थ - इस मन्त्र में भी यज्ञ करने की आज्ञा परमात्मा ने दी है। आपका कहना है कि जबकोई पदार्थ भौतिक अग्निअथवा सूर्य्य देव की किरणों में पड़ता है तब वह सूक्ष्म रूप हो कर फैलता है और जल इत्यादि को शुद्ध करता है सूरज की किरणें जल को खींचती हैं और अगर उनमें शुद्धता न हो तो वे जल इत्यादि को न तो अधिक रूप में खींच ही सकेंगी। न उसको शुद्ध ही कर सकेंगी। और यह दोनों दोष मनुष्य के लिये आगे चल कर अहित कर सिद्ध होंगे क्यों कि जब सूर्य्य की किरणें जल को पूर्णतया न खींच सकेंगी तब जल

कम बरसेगा और पृथ्वी पर अकाल पड़ने की सम्भावना बनी रहेगी। (जैसा कि आज कल प्रत्यक्ष दीख पड़ता है) इस कारण नित्य प्रति यज्ञ होना चाहिये। यही सब का हेतू है।

लेखक—मनुष्यो ध्यान से देखो कि आज कल अकाल क्यों पड़ते हैं। लोग दानों २ को क्यों तरस रहे हैं। इन सब बुराइयों का एक मात्र कारण यह है कि आज कल यज्ञ क्रिया भारत वर्ष से उठ गई है। इसके लोप होने से अकाल पड़ रहे हैं। यदि प्रकृति जंगल के पके हुये फलों को सूर्य्य देव की गर्मी में डालकर यज्ञ न करती तो बिलकुल निर्वर्षण रहता और भूतल पर फिर किसी जीव का निर्वाह होना कठिन हो जाता, परन्तु प्राकृति को मनुष्यों द्वारा हुये यज्ञों की सहायता मिलती रहे तो वह पूर्ण रूप से वर्षा कराने में समर्थ हो। कभी २ एक स्थान पर मात्रा से अधिक यज्ञ हो जाया करता है और इसी से वहां पर मात्रा से ज्यादा वर्षा भी होजाया करती है। देखिये बंगाल में जहां नारियल इत्यादि के फल अधिक सूखते हैं। अथवा प्रकृति द्वारा सूर्य्य कुण्ड में हवन किये जाते हैं वहां पर नियमित रूप से परियाप्त मात्रा में वर्षा हुआ करती है। इस वास्ते अगर आप लोग अकाल से देश की तथा अपनी रक्षा करना चाहते हो तो विधिवत नित्य प्रति यज्ञ किया करो। यह गुणों का पोषक तथा फलदायक है यह परमात्मा की आज्ञा है और उसके शुभ होने का काफी सबूत भी दे दिया गया है। यज्ञ करो और सुख उठाओ ॥१३॥

शर्म्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रतित्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

पदार्थ (शर्म्म) जहां पर मनुष्य घर बनाकर रहने की योजना करे, (असि) होवे, (अवधूतम) दूर करने पर (रक्षः) जिससे अपनी रक्षा करनी प्रतीत होवे अर्थात बदमाश लोग (अरायतो) आतताई दुष्ट स्वभाव वाले (अवधूतः) दूर हो (आदित्या) भूमि पर (त्वक) त्वचा (असि) होवे, (प्रतिवेत्तु) भली भांति उसकी उपयोगता का मनन करें (आदितः) ज्ञान रूप से (वानस्पतयः) उत्तम २ औषधियां (पृथुबुध्न) आसमान की तरह

विस्तार पूर्वक [प्रवा] जिसके समीप में परियाप्त मात्रा में जल प्राप्त होवे अथवा जल ग्रहण करने वाला [अदिः] बादल (यन्तु) ज्ञान देवे (प्रतिवेन्तुः) समझ कर दूसरो को अच्छी तरह समझावे ॥१४॥

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि कला कौशल सीख कर पृथ्वी पर तुम लोग घर बनाओ। तुम्हारा घर ऐसी जगह पर होना चाहिये जहां जल का कष्ट न हो। वर्षा का भी विचार करो घर जहां तक बन सके फैली हुई जगह में बनाओ और वहां से ऐसे आदमियों को दूर कर दो जो यज्ञ क्रिया न करते हों अथवा जो आततायी हों। अथवा ऐसा करो कि जिससे वे भी अपने क्रूर स्वभाव को छोड़ कर यज्ञ करने लगें। यज्ञ ही जल का हेतु है इस वास्ते तुम सब लोग अपने २ घरों में शान्ति के साथ रह कर यज्ञ करते रहो ॥१४॥

लेखक—मनुष्यो इस मंत्र में परमात्मा ४ बातों का आदेश देता है। १ स्वच्छ विस्तारित भूमि पर घर बनाने की चेष्टा करो। घर के समीप नदियां जलाशय अथवा कुआं अवश्य हो जिससे जल का कष्ट न हो। ३ घर के आस पास रहने वाले मनुष्यों को दुष्ट वृति से छुड़ा कर उन्हें धर्म का ज्ञान देदा करदो। ४ यज्ञ हमेशा किया करो क्यों कि यज्ञ से जल होता है और जल से अन्न और अन्न से प्राणी मात्र का गुजर होता है इस वास्ते यज्ञ नित्यप्रति होना चाहिये। इस वास्ते हे मनुष्य लोगो तुम लोग यदि संसार में सुख से निर्वाह करना चाहते हो तो ईश्वर की कही हुई ४ बातों को मानकर अपना २ सुन्दर घर बनाओ और उसमें हमेशा यज्ञ किया करो ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावसि वानस्पत्यः सइदन्देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ (अग्नेस्तनूरसि) प्रज्वलित अग्नि में तू हमेशा यज्ञ करे (वाचो) उस समय विधिवत मन्त्रो का उच्चारण करो और उसके अर्थ को मन में मनन करते रहो। (बृहद्ग्रावसि) स्थूल पर्वतों से पैदा हुये बड़े २ पत्थरों के टुकड़े (वानस्पत्यः) जंगली लकड़ी [देवेभ्यः] विद्वानों के निमित्त (देववीतये) सुन्दर और ग्रहण योग्य चरित्रवान पुरुषों के गुणों से, (सुशमि) पूर्णतया

शान्ति से प्रति पीड़ित पदार्थों तथा उसके विधि पूर्वक सेवन करने से अपने हृदय को (हवि) हवन करने की सामग्री [समीप] शुद्ध होवे (हविष्कृति) हवि होने वाली चीज़ों को तथा उससे पैदा हुई शान्ति को

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा आदेश देता है कि जब मनुष्य वेद मन्त्रों को पढ़ कर यज्ञ करता है और हवन करने को सुन्दर २ वस्तुओं को अग्नि में आहुति देता है तो हवि से सुन्दर सुगन्ध फैल कर आकाश में जाती है और वह जल और वायु को अत्यन्त शुद्ध कर देती है। हे मनुष्यो इस यज्ञ किया करो जो मनुष्य नित्यप्रति यज्ञ करता है उसको यज्ञ करता कहते हैं। और यज्ञ के प्रताप से उसकी भी कृत्ति दिन २ संसार में फैलती है। पत्थर और काष्ठ को भली भांति सग्रह करके तब घर बनाना चाहिये क्योंकि इसी हेतु से मैंने बड़े २ पर्वत और वृक्ष इत्यादि बनाये हैं।

लेखक—मनुष्यो यज्ञ अवश्य करो। देखो जब आग में लाल मिर्चा पड़ जाता है तो सबको छींक आने लगती है। केवल एक या दो मिर्चा सैकड़ों आदमियों को तंग कर देते हैं। तो इसी तरह से जब हवन की सामग्री अग्नि में डाली जाती है तो उसके परिमाणु भी अग्नि द्वारा सूक्ष्म हो जाते हैं और सबको आनन्द देते है। जल को शुद्ध करके हवा को साफ करते हैं और इन दोनों की शुद्धता कितनी आवश्यक है जो तो तुम लोगों को मालुम ही है। इस वास्ते परमात्मा की आज्ञा को पालन करो और नित्य प्रति यज्ञ किया करो। यज्ञ करने से तुम्हारा यश फैलेगा और संसार के साथ २ तुम्हारा भी कल्याण और यथोचित लाभ होता रहेगा ॥१५॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घातꣳ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

(कुक्कुटः) चोर तथा डाकुओं को अपने ग्रामों में बाधा डालने वाला (असि) होवे (मधुजिह्व) जिसकी जिह्वा से मधु बरसती होवे अर्थात्

मधुरभाषी, (ईषम) अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम) पवित्र और सुन्दर विद्या का भण्डार (आवद) पूर्ण ज्ञान से भरे हुये उपदेश करो (त्वया) तुम्हारे संसर्ग में (व्यम) हम लोग भी (संघातम) जिस रीति द्वारा शत्रुका भली भांति नाश हो जाया करे (क्षेष्म) पूर्णतया किसी को अपने वश में करना वर्द्धवृद्धम) मात्रा से अधिक चेष्टा करना अथवा अत्यन्त वर्षा की इच्छा के वशीवेत होना (प्रतिवेशु) वाद विवाद करके आपस में गूढ तत्वों को जान लेना परांपूत) सदैव अपवित्र रहने वाले पापी लोग (अराचतः) जो लोग उचित रीति से दान नहीं देते। (रक्षः) जिन से अपनी रक्षा करनी पड़े अर्थात दुष्ट और क्रूर स्वभाव के लोग (अपहतम) हन्त हो (हिरण्यपाणि) तेजस्वी हाथ वाला वायु पवन (अक्षिद्रेणपाणिना) जो प्रत्येक स्थान में अपना हाथ बटा सके अर्थात जिसकी गति सब जगह हो (प्रतिग्रहणाति) जो हमेशा कुछ लेता और देता रहे। [सविता] प्रत्येक पदार्थों को उत्पन्न करने वाला (देवः) शुभ गुणों से भूषित लोग विविनुक्तः) कहैं और सुनैं और उसका प्यार करैं (वः) तुझे (गृह्णनु ग्रहण करें॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी परमात्मा यज्ञ की प्रतिष्ठा करते हुये मनुष्यों को उपदेश देता है कि तुम लोग अपनी वाणी बनाओ किसी से द्वेश मत करो दुष्ट जीवों को शुद्ध करके उनकी दुष्टता का नाश करदो संग्राम में भी यज्ञ करते रहो अर्थात पुरुषार्थ के साथ अपना नित्य नैमित्यक कर्म करते रहो उसे कभी न छोड़ना चाहिये. यज्ञ और पुरुषार्थ के प्रभाव से ही रण भूमि में (इस संसार में प्रत्येक दिन संग्राम हुआ ही करता है) तुम लोग विजई बनोगे यज्ञ द्वारा हवन किये हुये पदार्थ वायु और सूर्य्य तक में प्रवेश करते हैं इस वास्ते यज्ञ प्रत्येकावस्था में होना चाहिये।

लेखक— मनुष्यों तुम्हें उचित है कि तुम सदैव मधुर बात बोलने का प्रयत्न करो. जब तुम्हारी वाणीं मधुर होगी तब सब दुष्ट लोग भी तुम्हारे मित्र बन जावेंगे। ऐसा हो जाने पर यदि वे लोग तुम्हारे प्रभाव में न पड़ें और अपनी दुष्टता करते रहैं तो फिर तुम्हैं युद्ध रूपी पुषार्थ करना चाहिये और उनको अपने मध्य से हटा देना चाहिये क्यों कि उनके संसर्ग से तमाम लोग बिगड़ जायंगे। इस वास्ते ऐसे आदमी संसार में जब तक रहते हैं वे झगड़े की जड़ हुआ करते हैं। तुम अपने तेज मय हांथो से और बुद्धि बल से उनका विनाश करो और मेरी उपासना करते हुये अपने में मुझको देख कर मुक्ति प्राप्त करो॥ १६॥

धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्याद सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृᳫंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्यु पदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

पदार्थः [धृष्ट] प्रत्येक अवस्था में भय से रहित (असि) हैं अग्ने) हे परमात्मा (यक्रव्यादम्) जो पदार्थ पक गये हैं अमामादं) जो पके नहीं हैं [देव यज्ञाम्] श्रेष्ठ गुण वाले (अग्निम् साधारण अग्नि (सेध, सिद्ध कीजिये (अपजहि) जिससे वह विस्तार रूपी जल को अपने भौतिक तेज से सुखा कर हमें शुद्ध करै तुम लोग इस प्रकार से मेरी उपासना किया करो ध्रुवम) निश्चय रूप से हमारी रक्षा करने वाले हैं (असि) हैं (पृथिवीम) फैली हुई भूमि पर जिस पर मनुष्यों का निवास हो सके (दृंह उत्तम २ गुण प्रदान करें भ्रातृव्यस्य) द्वेश न करते हुये दुष्ट मनुष्यों को उनके कर्मानुसार अपनी न्याय द्वारा उनको दण्ड देना, वधाय वध के लिये ब्रह्मवनि क्षत्रिवन सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्री और संसार से सारे मनुष्यों को त्वां) आप । [उपदधामि] हृदय में धारण करता हूं इस प्रकार से तुम लोग मेरी नित्य उपासना करो ।

भावार्थ इस मन्त्र का अर्थ बड़ा ही गूढ़ और टेढ़ा है इसमें परमात्मा मनुष्यों को उपासना करने की विधि बताता है उसका कहना है तुम लोग यह समझो कि सारे संसार में जो उपकार की अग्नि जल रही है वह मुझसे ही पैदा हुई है। कहीं सुर्य्य कहीं पर विद्युत और कहीं पर साधारण अग्नि की तरह प्रकाशित रहता हूं। भौतिक अग्नि होकर पके फलों को सूर्य्य देव की अग्नि में विद्युत शक्ति द्वारा पहुंचाता रहता है इस वास्ते तीनो पृथक पृथक अग्नि मेरा ही स्वरूप है ऐसा समझकर तुम लोग मेरी उपासना करो।

लेखक। इस मन्त्र में साधारण रीति से देखने पर यह मालूम होता है कि मनुष्य ईश्वर से कुछ प्रार्थना करता है और इससे यह सिद्ध होता है कि वेद भी मनुष्यों का बनाया है परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है इस मन्त्र का अर्थ यह है कि परमात्मा मनुष्यों के लिये उपासना का ढंग बताता है। वह कहता है कि तुम लोग मुझे तेजरूप समझकर उपासना करते रहना क्योंकि भौतिक विद्युत तथा सूर्य्य इत्यादि में जो ज्योति है उसका आश्रय में ही हूं मुझ में से ही तमाम तेजों का संचार होता है। ऐसी बात समझ कर उपरोक्त रीतियों से तुम लोग हमेशा मेरी उपासना करते रहना ॥१७॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय धर्त्रमसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चितस्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

पदार्थः—(अग्ने) परमात्मा [धरुणाम्] जिसने सब को धारण किया है। [असि] हैं। [ब्रह्म] जो सब में व्याप्त है। (गृभ्णीष्व धारण करना [अन्तरिक्षम्] आकाश की तरह जो सर्वमय ज्ञान है उनको (दृंह बढ़ाना [भ्रातृव्यस्य] दुश्मनों को [वधाय] मारने के लिये। [ब्रह्मवनि] सब के कल्याण के वास्ते [क्षत्रवनि] राज्य के लिये [सजातवनि] सजात वालों के लिये। [त्वा] उसको [उपदधामि] हृदय के बीच में [धर्त्रम्] लोकों को धारण करने के लिये। [दिवम] उत्तमता के साथ [दृंहं] बढ़ै [विश्वाभ्यः] विश्वभर [आशाभ्यः] आशा से। [उपदधामि] धारण करता हूं। [चितः]। [ऊर्ध्वचितः] उत्तम ज्ञान वाले [भृगुणाम्] जो विद्या से भरे हैं उनका। [अंगिरसाम्] प्राणों से। [तपसा] तप से। [तप्यध्वम्] तपो और तपाओ।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा आदेश देता है कि तुम विद्या की उन्नति करके अविद्या का नाश करो। शत्रुओं का दमन करो। और इसकी वृद्धी के लिये तमाम साधनों को जमा करो जिससे तुम्हारे सुखों की उन्नति हो।

शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवस्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः [शर्म] जो सब तरह से सुख देने वाला हो। [असि] है।
[अदितिः] जिस जिसका नाश न हो [रक्षः] जिससे रक्षा करने की जरूरत है [अवधूतम्] जो नाश हो जाय उसको। [अरातयः] नीच मनुष्य जिसमें किसी भी प्रकार का कोई धर्म न हो। [अवधूताः] नष्ट [असि] है [अदित्याः] सुर्य्य भगवान। [त्वक] चमड़ा [त्वा] उसको [वेत्तु] भली प्रकार मानो। [पर्वती] जिसमें मे ज्ञान की मात्रा विशेष हो। दिवः) प्रकाश देने वाली (स्कम्भनी) रुकावट डालनी वाला (प्रातंतेयी) पृथ्वी (धिषण) वेद की ऋचा (अदित्याः) पृथ्वी त्वक देहका चमड़ा (त्वा) उसे (प्रवेत्तु) बार बार समझे और मनन करो।

भावार्थ—इस मंत्र में परमात्मा आदेश देता है कि यज्ञ के अनुष्ठान को विधिवत करो। उन सब चीजों का संग्रह करो जो सुगन्ध देने वाली हों यज्ञ में हवन किये हुये पदार्थ वायु में मिल कर अपनी सुगंध से सारे संसार को सुगंधित कर देते हैं। कौनसी वस्तु में किस प्रकार की सुगंध है उसे भी पहिले बाल्य काल में विज्ञान सीखते समय सीख लो क्यों कि अगर अपनी अज्ञानता से तुम कोई ऐसी वस्तु आग में छोड़ोगे जो सुगंध के बदले दुर्गंध कर देती है तो फिर ऐसे यज्ञ से लाभ के स्थान हानि होने की अधिक सम्भावना है ॥१९॥

लेखक—इस मत्र में विज्ञान शास्त्र की चर्चा है।

बिना विज्ञान जाने हुये मनुष्य को इस बात का पता नहीं लग सकता कि किस वस्तु में कौनसा गुण है बिना इस ज्ञान के यज्ञ क्रिया ठीक नहीं हो सकती। घी चन्दन धूप जौ चावल तिल सोपारी कपूर इत्यादि सुगंधित चीजों से यज्ञ करना चाहिये। कोई दुर्गंधित पदार्थ यज्ञ में हवन न करना चाहिये। यज्ञ की महिमा इस मन्त्र से भले प्रकार से प्रकट हो रही है इस वास्ते हम सबको नित्य उपरोक्त विधि से यज्ञ करना चाहिये भारत वर्ष के कल्याण का एक मार्ग वेदानुकूल चलना है। जब तक हम वेद के अनुसार न चलेंगे तब तक हम किसी प्रकार की उन्नति न कर सकेंगे ॥१९॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषेधान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयो-ऽसि ॥२०॥

(धान्यम्) शुद्ध और रोग रहित अन्न को (असि) है (पय) जल (देवान) विद्वान मनुष्यों की कर्म करने की शक्तियां (धिनुहि) भरता है। (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये (उदानाय) उदान वायु के लिये जिससे शरीर में बल होता है। (व्यानाय) व्यान वायु के लिये (दीर्घाम) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्यन्त सुख कारी (आयुषे) पूरी आयु में (धाम) ग्रहण करता हूं (हिरण्यपाणि) जिसके हाथ से प्रकाश हो अर्थात् जिससे अपने को ज्ञान मिले (सविता) सब प्रकार से सुख देने वाला अच्छिद्रेण अपने उत्तम उत्तम व्यौहार से (महीनाम्) तजस्वी वाणियों को (प्रत्युन्नु गृभणातु) अपनी असीम कृपा से उसे धारण करता है।

भावार्थ—शुद्ध अन्न के सेवन करने से शरीर में बल पौरुष और पराक्रम होता है। यज्ञ से शुद्ध किया हुआ अन्न ही सेवन योग्य है। इस वास्ते मनुष्यों को नित्य प्रति यज्ञ करना चाहिये। जिस प्रकार से परमात्मा ने सूर्य्य इत्यादि को बनाकर उसके द्वारा प्राकृतिक पदार्थों से नित्य प्रति यज्ञ कराया करता है उसी प्रकार हम लोगों को भी उचित है कि नित्य प्रति यज्ञ किया करें और वेद में जो विधि लिखी है और जिसका बयान हम आगे करेंगे। उसी प्रकार से यज्ञ करे। जैसे परमात्मा ने सूर्य्य भगवान को प्रकाशित किया है। उसी प्रकार हमको भी चाहिये कि हम भी सारे संसार के कल्याणार्थ वेदों के ज्ञान का प्रकाश करें। जैसे परमात्मा दयालु है उसी प्रकार हमें भी प्राणीमात्र पर दया करनी चाहिये। नित्य प्रति अपने उद्योग में लग कर पृथ्वी का राज भोगना चाहिये।

लेखक—जिस शक्ति से मनुष्य का शरीर अधो पत दशा में रहता है उसे लाने के लिये इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि शुद्ध अन्न जल का सेवन किया जावे।

यज्ञ से बचा हुआ और अपनी मेहनत की कमाई का अन्न शुद्ध होता है सदा इसी का सेवन करना चाहिये। जिस प्रकार परमात्मा नित्य प्रति अपने नियमोनुसार रह कर सारे संसार का पालन पोषण करता है उसी प्रकार हम लोगों को भी हमेशा अपना नियम बना कर उसके अनुसार काम करना चाहिये। बिना नियम पालन किये ससार का काम कभी नहीं चल सकता। चांद सूर्य्य वायु नदी सब अपने नियम पर चल कर शोभित हो रहे हैं।

मनुष्यों को भी अपने नियमानुसार काम करना चाहिये। इस मंत्र में नियमानुसार नित्य प्रति यज्ञ करने का उपदेश है ॥ २० ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् संवपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन स ᳪ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्तां सम्मधु मतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

(सवितुः) संसारिक पदार्थों से परिपूर्ण करने वाले (प्रसवे) परमात्मा ने प्रकृति की सहायता से जिस संसार को बनाया है उसमें। (अश्विनो) प्रकाशित ग्रहों के प्रकाश में (बाहुभ्याम्) दृढ़ता से अथवा साधन से। (पूष्णः) सबल बनाने वाली शुद्ध वायु द्वारा (हस्ताभ्याम्) पंच वायु की सहायता से (त्वा) तीनों प्रकार की यज्ञों को (संवपामि) मैं प्रचार करता हूं (ओषधिभिः) जौ तिल इत्यादि दवाइयों तथा वनस्पतियों से। (आपः) जल (रसेन) रस से (जगतीभिः) संशोधित औषधियों से। (रेवत्यः) उत्तम जल से (मधुमतीभिः) मधु से संपृच्यन्ताम् वैद्यक शास्त्रानुसार सिद्धि तथा तय्यार करना चाहिये ॥२१।

सूर्य्य से प्रकाशित इस संसार में परमात्मा ने अनेकों प्रकार की उत्तम २ औषधियां बनाई हैं उनको यथावत जानकर और शास्त्रानुसार एक दूसरे का उचित मात्रा में संयोग करके तीनों प्रकार की अथवा शारीरिक सामाजिक तथा मानसिक यज्ञ करना चाहिये। जिस प्रकार से सारी औषधियां सूर्य्य से प्रकाश पाकर बढ़ती और जल के मिलाप से अपने अन्दर सुन्दर और पुष्टकारी रस की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार उत्तम रीति से यज्ञ किया हुआ वायुमंडल शुद्ध होकर पृथ्वी के समस्त जीवों के लिये कल्याणकारी होता है। इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य का यह परम कर्तव्य है कि वह नित्य प्रति यज्ञ करता रहे ॥२१॥

लेखक—वेद पर भाष्य करने वाले अपनी अल्पज्ञता अथवा जान बूझ कर मनुष्यों को गड्ढे में गिराने के लिये इस मंत्र से परमात्मा को जो निराकार है साकार सिद्ध करने की कोशिश की है। इस मंत्र में हस्ताभ्याम् तथा

बाहुभ्याम शब्द आये हुये हैं और संस्कृत के व्याकरण से इनके अर्थ "हाथ से" और "बाहु से" भी होते हैं परन्तु शतपथ ब्राह्मण तथा वैदिक शब्द भंडार के पढ़ने से वह अर्थ भी साफ़ साफ़ मालूम हो जाता है जो इस लेखक ने अपने "पदार्थ" में दिया है। वेदों पर भाष्य करने वाले पंडित मुझसे लाख गुना विद्वान रहे होंगे मैं यह कहने की हिम्मत नहीं करता कि उनको ठीक अर्थ न मालूम हुआ होगा इसी से मैंने कहा है कि उन लोगों ने जान बूझ कर केवल परमात्मा को साकार सिद्ध करने के लिये उल्टा अर्थ किया है। ॥ २१ ॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके ॥ २२ ॥

पदार्थ (जनयत्यैः) जिस चीज़ से सारा सुख पैदा होता है और जो संसारिक वस्तुओं के संग्रह करने का मूल तथा सुविधा जनक साधन है अर्थात लक्ष्मी के लिये। (त्वा) तीनों प्रकार के यज्ञों को। (संयोमि) मैं हवन करता हूं। (इदम) इस हव्य को (अग्नेः) अग्नि में पड़ता है। (इदम वह। अग्निषोमयौ) सूर्य्य और चन्द्रमा में पहुंचकर (इषे) अन्न जल औषधि इत्यादि को पैदा करने का निमित्तकारण होता है। (विश्वायुः) पूर्णायु भी। (उरुप्रथाः) अत्यन्त सुख प्रद होता है। (घर्मः) उचित कार्य्य को संयोग। असि है। (त्वा) उस तीन प्रकार की यज्ञों को। (उरु प्रथस्व) विस्तृत रूप से उसका प्रचार करो। (ते) इस प्रकार से संचालित यज्ञ के अद्भुत प्रभावों से। (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) यज्ञ सम्बन्धी अग्नि [वर्षिष्ठे] खूब बढ़ा हुआ [उरु प्रथिताम्] अच्छी प्रकार से बढ़ावै। [सवितः] सबके मन का भावने वाला। [देवः] ईश्वर [मा] कभी नहीं [हिंसीत] नष्ट करै। [अधिनाके] उतमोतम सुख में [त्वा] तुमको [श्रपयुत] सुख से परिपूर्ण करे। ॥ २२ ॥

भावार्थ परमात्मा मनुष्यों को इस मंत्र द्वारा आदेश देता है कि तुम जल वायु को शुद्ध रखने तथा अन्नादि पदार्थों को पैदा करने के लिये यज्ञ करो

क्यों कि यज्ञ से सारे रोग नष्ट हो सकते हैं । यज्ञ क्रिया में कभी कमी नहीं होनी चाहिये । क्यों कि अगर इस में कमी होगी तो जल वायु शुद्ध नहीं रह सकता और जल वायु की अशुद्धता सारे रोगों की जड़ है । रोग से नतो लक्ष्मी की कमाई हो सकती और नतो संचित और बाप दादों द्वारा सुरक्षित द्रव्य ही सुरक्षित रह सकता इस वास्ते यज्ञ करना प्रत्येक मनुष्य का संसारिक और पारलौकिक दोनों धर्म है ॥ २२ ॥

लेखक—परमात्मा यज्ञ का आदेश देते हुये इस मंत्र में कहता है कि यज्ञ क्यों करना चाहिये । इसका कारण बताते हुये वह कहता है कि बिना यज्ञ के संसार सुचारु रूप से कभी चल नहीं सकता अगर यज्ञ न किया जावेगा तो जल और वायु शुद्ध नहीं रह सकते और बिना इसके मनुष्य का स्वास्थ ठीक नहीं रह सकता बिना स्वास्थ ठीक रहे मनुष्य लक्ष्मी को पैदा नहीं कर सकता और बिना द्रव्य के संसार का कोई काम ठीक और नियमित रूप से चल नहीं सकता । इस वास्ते सारे संसार को विधिवत नियमानुसार चलाने के लिये यज्ञ एक महान कारण है । इस वास्ते हे मनुष्यो यज्ञ (कर्म) करने में कभी कमी नहीं होना चाहिये । यज्ञ ही से सारे संसार का कल्याण पहिले होता था उसकी कमी होने से आज भारत की दुर्दशा हो रही उस को पूरा करना भारत का कल्याण कारक मार्ग होगा । ॥ २२ ॥

मा भेर्मा सं विक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

(मा) मत । (भेः) भय करो । (मा संविक्थाः) मत चलायमान हो । (अतमेरुः) अत्यन्त आदर और प्रेम से । (यजमानस्य) यजमान के यज्ञ का अनुष्ठान । (प्रजा) संतान (भूयात) पैदा करो । (त्वा) तीनों प्रकार की यज्ञों को । (संयौमि) अवश्य मैं करता हूं और इस वास्ते तुम भी करो ।

भावार्थ—ईश्वर सब को आदेश देता है कि यज्ञ करने में न तो किसी को किसी से डरना चाहिये न किसी को कभी इस से विचलित होना चाहिये । इसी से मनुष्य को उत्तम उत्तम पदार्थ और संतान मिलते हैं । इसी से मानसिक तथा शारीरिक सुख की वृद्धि भी होती है ।

लेखक—शुभ कर्मों के करने में बारंबार विघ्न पड़ता है तथा भय भी होता है और विघ्नों के कारण चित्त चलायमान हो जाता है। इस वास्ते परमात्मा जो कि सबका कल्याण चाहता है और सबको शुभ कर्मों में प्रवृत देख कर प्रसन्न होता है इस मन्त्र द्वारा सबको अभय और अटल रहने का आदेश देकर उन्हें सूचित करता है कि यदि तुम लोग समस्त सुखों को चाहते हो तो समस्त सुखों का देने हारा जो यज्ञ है उसे निश्चित रूप से भय रहित होकर नित्य प्रति करते रहो ॥ २३ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥२४॥

पदार्थ (सवितुः) सब ऐश्वर्यों का दाता निराकार आनन्द रूप परमात्मा (देवस्य) देवताओं का भी देवता। (प्रसवे) पैदा करने में (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्र अग्नि इत्यादि प्रकाश देने वाले पदार्थ (पूष्णः) बल तथा पुष्ट करने के साधन (हस्ताभ्याम्) त्याग और ग्रहण करने के साधनों से। (देवेभ्य) शुभ गुणों और आनन्द प्रदायक वस्तुओं के लिये। (अध्वरकृतम) संसार को नियम रूप से चलाने जो कर्म वेदानुकूल हैं उनको करने में जो दक्षता और पवित्रता होती है उन उत्तम गुणों को। (आददे) मैं उसें स्वीकार तथा अङ्गीकार करता हूं (इन्द्रस्य) तेज परिपूर्ण पदार्थों का (सहस्रभृष्टि) सहस्रों प्रकार की चीजों पचाने की शक्ति रखने वाला (शततेजा) सैकड़ों प्रकार का तेज (दक्षिणः) प्राप्त करने की शक्ति रखने वाला (बाहुः) जिससे ग्रहण किया जावे अर्थात् सूर्य्य चन्द्रमा की किरणें (असि) है तिग्मतेजाः प्रचन्ड तेज और उग्र भेद तथा प्रताप का आश्रय देने वाला (वायुः) संलग्नितरूप से जिसमें किसी का निरन्तर हेतु हो वह पदार्थ [द्विषतो] जो हमसे अपने स्वार्थसाधन के लिये अन्याय रूप से द्वेष रखते हों उनको बधः नाश करना चाहिये ॥२४॥

परमात्मा इस मंत्र द्वारा मनुष्यों को यज्ञ करने का कारण उसकी उपयोगता तथा उससे लाभ बताते हुये आदेश देता है कि शुद्ध और पवित्र वस्तुओं

को तेज युक्त पदार्थों अर्थात अग्नि और सुर्य्य में डालने से उनके परिमाणु हलके होकर उनके किरणों में मिल जाते हैं जब वायु के साथ उनको सनलग्नता होती है तो वह एक स्थान से दूसरे स्थान में अपने गुणों को फैलाते हैं। इस तरह यज्ञ क्रिया से हर एक स्थान को गन्दगी कुछ तो नष्ट हो जाती है और कुछ सुगन्ध में परिवर्ति हो जाती है इस प्रकार वायुमंडल शुद्ध होकर मनुष्यों को सुखका ौ और बलवती स्थिति पैदा कर देता है अतः सबको प्रत्येक दिन यज्ञ करते रहने चाहिये ॥२४॥

लेखक इस मंत्र में भी "हस्ताभ्याम्" और "बाहुभ्याम्" शब्द आये हैं परन्तु यह अलङ्कार है और इनका अर्थ हस्त से और बाहु से नहीं है बल्कि वही है जो इस तुच्छ लेखक ने अपने पदार्थ में दिया है। इस मत्र से परमात्मा की साक्षात्ता नहीं प्रकट होती है बल्कि सुर्य्य इत्यादि की किरणें ही इसका अर्थ है प्रमाण में शतपथ और इसी प्रकार की अनेक पुस्तकें हो सकती ॥ २४ ॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलम्मा हिंᳩसिषं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्या पृथिव्या शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वय द्विष्म-स्तमतो मा मौक् ॥२५॥

पदार्थः [सवितः] तमाम ऐश्वर्यों का देने वाला परमात्मा (देवयजनि) वह स्थान जहां पर श्रेष्ठ मनुष्य यज्ञ करें (देवः) प्रकाश करने वाले देवता अर्थात सुर्य्य चन्द्रमा (पृथ्वी) भूमि (मूलम्) जड़ [पृथिव्याम्) भूमि में (यः) जिस यज्ञ को करना चाहते हैं। [व्रजम] जल बरसाने वाला मेघ (गच्छ , वहां पर जाकर (गोष्ठानम्) सुर्य्य की किरणों को वर्षतु बरसाता है (अस्याम्) इस पृथ्वी को शक्ति बढ़ाने में [अस्मान्] सज्जन लोग (यः) इससे विपरीत अर्थात दुष्ट जन (द्वेष्ट) द्वेश करता है (च) और शतेन) सैकड़ों (पाशैः) बन्धनों से (तम) उसको (मा मौक) मत छोड़ो। ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमात्मा आदेश देता है प्रत्येक देश में वहीं के लोग उस पृथ्वी का भोग करें अर्थात अपने अपने देश का अपने २ क़ब्जे में रक्खे। यज्ञ का और पृथ्वी की उपज शक्ति का नाश न होने दे। जो दुष्ट लोगों से व्यर्थ में कलह

करता और द्वेश रखता है उसे ऐसे अनेकों बन्धनों से जकड़े कि वह कभी अपने को मुक्ता वस्था में न देख सके। ऐसा करने से अनेक प्रकार के दुष्ट कर्म्म पृथ्वी से नष्ट हो जांयगे ॥२५॥

लेखक—इस मन्त्र में परमात्मा स्वराज्य करने का आदेश देता है प्रत्येक देश वासी को अपने स्वदेश पर अधिकार रखना चाहिये। अगर कोई उसका हक ले तो इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये ॥२५॥

अपाररुं पृथिव्यै देवंयजनाद्वध्यासं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतुते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬशतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौकः। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬशतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौकः॥ २६ ॥

पदार्थः [देवः] परमात्मा (सवितः) सबके हृदय की बात का जानने वाला परमात्मा - [पृथिव्यै] पृथवी में (देव यजनात अच्छे २ विद्वानों से [अररुम्] जिनका स्वभाव अच्छा न हो उनको। (अपवध्यासम्) हनन् और वध करता हूं। [व्रजम्] जाता हूं। (गच्छ) तुम भी जाओ [गोष्ठानम्] अमृत की वर्षा करता हूं। (वर्षतु) तुम भी वैसे ही बरसाओ (द्यौ) आकाश ते उसी प्रकार से। [यः] मूर्ख लोग (अस्मान) विद्वान सज्जनों से। (द्वेष्टि) द्वेप रखता है। [च) और। (यम) दुष्ट मनुष्यों को। (वयम्) हम विद्वानों को। (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस परम शत्रु का (अस्मान) इस (पृथिव्याम्) पृथ्वी में (शतेन) अनेक प्रकार के (पाशैः) बन्धनों से (वधान उसको बांधो (मा मौक) मत छोड़ो (अररा) दुष्ट (द्विम्) प्रकाश (मापप्तः) न प्राप्त कर [द्रप्स) आनन्द भान करने की शक्ति द्याम्) आनन्द (मास्कन) न ग्रहण कर। ॥ २६ ॥

भावार्थ—उत्तम गुणों के सम्पादन करने की क्रिया में जो दुष्ट मनुष्य बाधा डाले उसे हनन नाश तथा बन्धन में जकड़ने की आज्ञा परमात्मा इस मन्त्र द्वारा देता है उसका आदेश है कि ऐसे मनुष्यों को पृथ्वी पर बढ़ने न देना

चाहिये और जिनसे उत्तम उत्तम विद्या का प्रचार ही उसको रक्षा करना सब बलिष्ठ पुरुषों का परम धर्म है। शारीरिक बल तथा विज्ञानिक बल से पूर्णतया सम्पन्न होकर इस विद्या का प्रचार करना कलाकौशल सीखना और उससे सुख प्रद साधनों की सृष्टि करना प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य होना चाहिये। दुष्टों को दंड देना तथा सज्जनों की पूजा करना ही परमात्मा के उपदेशानुसार चलना है। इसी उत्तम रीति को ग्रहण करने से मनुष्य इस संसार में अपना कर्तव्य पालक होकर सुख पासकता है और यही मेरी (परमात्मा) आज्ञा है। इसका उलंघन करना अपने को संकट में डालना है। ॥२६॥

लेखक इस मन्त्र द्वारा परमात्मा मनुष्यों को साफ २ शब्दों में अपना कर्तव्य पालन करने को कहता है कभी किसी दुष्ट के साथ प्रेम न करना चाहिये उसका प्यार सज्जनों तथा साधारण लोगों को दुखदाई होगा बहुत से लोग इसको हिन्सा समझेंगे। परन्तु ऐसा करना वैदिक अहिन्सा ही है। कर्तव्य के आगे मरना और मारना दोनों ठीक है। कहीं मरना उचित समझा जाता है तो कहीं मारना ही अच्छा होता है। इस वास्ते दुष्ट मनुष्यों को सदा बधन में रक्खो। ॥२६॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ २७ ॥

पदार्थः—[सूक्ष्मा] पृथ्वी (असि) होती है। (शिवा) मंगल करने वाली (स्योना) सुख पैदा करने वाली (सुषदा) सुख से स्थिर रखने वाली [उर्जस्वती] उर्वरा अर्थात् अधिक अन्न पैदा करने वाली (पयस्वती) अधिक उत्तम रस पैदा करने वाली (त्वा) तीनों प्रकार के यज्ञों को। (गायत्रेण) गायत्री से [छन्दसा) आनन्द देने वाली राग से। (परिगृह्णामि) इधर उधर उधर से लाकर एक स्थान पर जमा करता हूं ॥ २७ ॥

भावार्थ – परमात्मा आदेश करता है कि तिनों प्रकार का यज्ञ हमेशा होना चाहिये क्योंकि इसी यज्ञ क्रिया से पृथ्वी में अन्न रस जल इत्यादि की शुद्धि होती है। वेद मंत्रों के अर्थ समझे अधिक लाभ नहीं है। इसी से सारे सुख मिल सकते हैं। ॥ २७ ॥

लेखक—वेद मंत्रों का अर्थ जानना अत्यन्तावश्यक है यदि केवल अर्थ समझ कर यज्ञ किया जावे तो वह भी ठीक है परन्तु अधिक अच्छा यही है कि मन्त्र और अर्थ दोनों के ज्ञाता होकर हम यज्ञ क्रिया नित्य करें। यज्ञ से ही पृथ्वी की शक्ति बढ़ती और उससे अनेक प्रकार सुखदाई वस्तुओं का संग्रह होता है ॥२७॥

क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥२८॥

(विरप्शिन) परमात्मा (याम्) जिस (स्वाधाभिः) अन्न इत्यादि से भरे हुये (जीवदानम्) प्राणियों के जीव को रक्षा तथा संचालित करने वाले (पृथ्वीम्) पृथ्वी को (उदादाय) ऊपर खीच कर (चन्द्रमसि) आनन्द से परिपूर्ण होकर चन्द्रमा के पास (धीरासः) धीर वीर पुरुष (याम) जिस (बिसृपः) युद्ध से प्रभावित (क्रूरस्य) बदमाशों का पूरा पहिले (प्रोक्षणी) प्राप्त करना (द्विषतः) शत्रुओं का वधः) नाश (असि) हैं।

भावार्थ—जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष पृथ्वी चन्द्रमा तथा सूर्य्य इत्यादि प्रकाश वान और उपयोगी पदार्थ बनाये हैं वही जा जाना चाहिये । राज सुख प्राप्त करने के लिये दुष्टों का दमन करना अत्यावश्यक है

लेखक—इस मंत्र में परमात्मा कहता है कि मैं ही ने तमाम पदार्थों की रचना सबके लिये सम भाव से की है मगर दुष्ट लोग उसे अपना लेते हैं। विद्वानों को उचित है कि संगठन करके विद्या केवल से अस्त्र शस्त्र बनावें और उनको दमन करें।

प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता अरातयो अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥२९॥

पदार्थः (प्रत्युष्टं रक्षः) दुर्जन और बुरी संगति में रहने वाले लोग (प्रत्युष्टा अरायतः) जा आततायी हो और सत्य पथ को ग्रहण करने में आना कानी करे । (निष्टपतं रक्षः) मज़बूत पाश जिससे योग्यता से कोई चीज़ बांधी जावे । (त्वा) उस (वाजिनम्) वेग से चलने वाली चीज (वाजेध्यायै) मज़बूत और विजय प्राप्त करने वाले रण साधनो द्वारा (संमार्ज्मि) वस्तुओं को दोष विहीन करके उनको शुद्ध करता हूं (सपत्नक्षित) शत्रु को नाश करने वाले (अशिता) बड़ी भारी सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) जो दूसरों का सुख सहन न कर सके (प्रत्युष्टा अरायतः) आततायी और दूसरों को दुख देने वाले लोग (निष्टप्तं रक्षः) व्यभिचारी और बुरी संगत में रहने वाले (निष्टप्ता अरायतः) दूसरों के सुख से जलने वाले कुत्सित विचारों के लोग । त्वा उस (वाजिनीम्) बलवती सैना (वाजेध्यायैः) उपयुक्त साधनों (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं । (अनिशितः) योग अथवा रसायन द्वारा शुद्ध किया हुआ ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि वे विद्या और रसायन द्वारा रण सम्बन्धी सभी अस्त्र शस्त्र तय्यार करें और उससे दुष्टों का भली भांति दमन करें क्यों कि संसार में दुष्टों का अस्तित्व सज्जनों के लिये बाधक है। दुष्टों के दमन करने के लिये तमाम रस साधनों का जमा करना कोई पाप नहीं है ॥२९॥

अ॒दि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॒ विष्णो॑र्वे॒ष्पो᳖स्यू॒र्जे त्वाद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्यामि। अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सु॒हूर्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ २ मे भव॒ भव यजु॑षे २ ॥३०॥

पदार्थ—(अदित्यै) भूमि पर उपजे हुये (रास्ना) पदार्थों में भरे हुये प्रकार के रसों को पैदा करने वाले आप (असि) हैं विष्णोः) व्यापक और तमाम संसार में अपनी सत्ता को फैलाने वाले (वेष्पः) पृथ्वी इत्यादि (अग्नेः) संसारिक आग (जिह्वा) जीभ की तरह अपना विचार फैलाने का कारण (देवेभ्य) विद्वानों के लिये धाम्नेधाम्ने जिन जिन जिन पदार्थों में उनकी प्रवृत्ति होती जाती है (यजुषे २) मंत्र में अपना भाव प्रकाशित करने के लिये सुहः] विद्वानों लोग जिनकी स्तुति करते हैं (त्वा) आपको [अदब्धेनं] प्रेम से [चक्षुष] ज्ञान रूपी आंख से [ऊर्जे पराक्रम से [अदित्यै भूमि [देवेभ्यः] अच्छे गुणों से [अवपश्यामि] ज्ञात से देखता हूं [भव) हो । ॥ ३० ॥

भावार्थ। यह मंत्र यज्ञ की विशेषता बताता हुआ कह रहा है कि जैसे पृथ्वी के ऊपर पैदा हुये तमाम रसों का पैदा करने वाला तथा वेद के मंत्रों में प्रति पादित हुआ परमात्मा तमाम मनुष्यों से सेवा करने योग्य है उसी प्रकार से यज्ञ की भी महिमा समझनी चाहिये अर्थात वह भी सब प्रकार के मनुष्यों से किया जाना चाहिये। ॥ ३० ॥

लेखक। जो लोग वेदों को मनुष्यकृत मानते हैं उन्हें इस मन्त्र में अपने भाव को प्रतिपादन करने के लिये बहुत कुछ मसाला मिलता है परन्तु यदि गहराई के साथ इस मन्त्र के शब्दों पर विचार किया जावे तो उनका अर्थ बिल्कुल ग़लत मालूम हो जायगा। अल्प बुद्धि वाले मनुष्य शब्दों का अर्थ प्रकरण से भिन्न समझते हैं और इसी से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

मेरे किये हुये पदार्थ से भली भांति मालूम हो जायगा कि जहां पर (अवपश्यामि) पद आया हुआ है वहां पर उसका अर्थ आंख से देखना नहीं है बल्कि ज्ञान से देखना है नहीं तो वहां पर केवल पश्यामि शब्द से ही काम चल सक्ता है। अवय, की कोई आवश्यकता नहीं थी जहां पर यह ध्वनि निकलती है कि परमात्मा (युजुष यजुष) (धाम्न २) वेद के मन्त्र २ में है वहां पर भी यही अर्थ ठीक मालूम होता है कि परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि जिस प्रकार से मैं तमाम वेदों में जाना २ आवश्यक समझा जाता हूं उसी तरह यज्ञ को भी समझना चाहिये और अध्याय के समाप्त होते होते यह मन्त्र यज्ञ की विशेषता और आवश्यकता की प्रति पादित करता है ॥३०॥

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

पदार्थ (अच्छिद्रेण) बिना किसी विघ्न के जो रोज़ रोज़ किया जावे उससे। (पवित्रेण) पवित्रता से (सूर्य्यस्य सूर्य्य की रश्मिभिः किरणों से उसको शुद्ध करता है। (त्वा) उसको (उत्पुनामि) मैं पवित्र करता हूं। (सवितुः) परमात्मा के (प्रसवे) पैदा किये हुये पदार्थों से भरे हुये संसार में (तेजोऽसि) स्वयं जिसमें प्रकाश हो (शुक्रमसि) जिसमें बल हो [अमृतमसि] नाश रहित [धामसि] सब पदार्थों का आश्रय देने वाला [नामासि] पूजा और उपासना करने के योग्य [देवानाम] विद्वानों के [प्रियम] प्रिय वस्तु (अनाधृष्टम जिससे किसी को भय न हो (देव यजमानसि) पूजा करने के योग्य है ॥ ३१ ॥

भावार्थ — पवित्रता के साथ जो यज्ञ नित्य किया जाता है वह सूर्य की किरणों से मिल कर अपना प्रभाव संसार के तमाम पदार्थों पर डालता है और इस कारण से तमाम पदार्थ ऐसे हो सकते हैं जो हमारी शरीर तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले तमाम पदार्थों को पुष्ट करता है इस वास्ते यज्ञ का करना आवश्यक है ॥ ३१ ॥

लेखक—परमात्मा आदेश देता है कि यज्ञ नित्य प्रति होना चाहिये और सो भी पवित्रता से । यहां पवित्रता शब्द पर अत्यन्त ध्यान देने की आवश्यकता है क्यों कि यदि यज्ञ अपवित्रता से किया जायगा तो वह अपना प्रभाव किसी पर नहीं डाल सकता। पवित्रता के लिये शारीरिक आत्मिक तथा आर्थिक पवित्रता सबको समझनी । अगर पाप कर्म करके द्रव्य कमाया जावे और उसका उपयोग यज्ञ में किया जावे तो वह पवित्र यज्ञ कभी नहीं कहा जा सकता

इति प्रथमोऽध्याय समाप्तः

नोट इस अध्याय में यज्ञ की महानता और उसकी आवश्यकता बताई गई है ।

दूसरा अध्याय शीघ्र देखिये ।

वैदिक धर्मावलम्बियों से निवेदन।
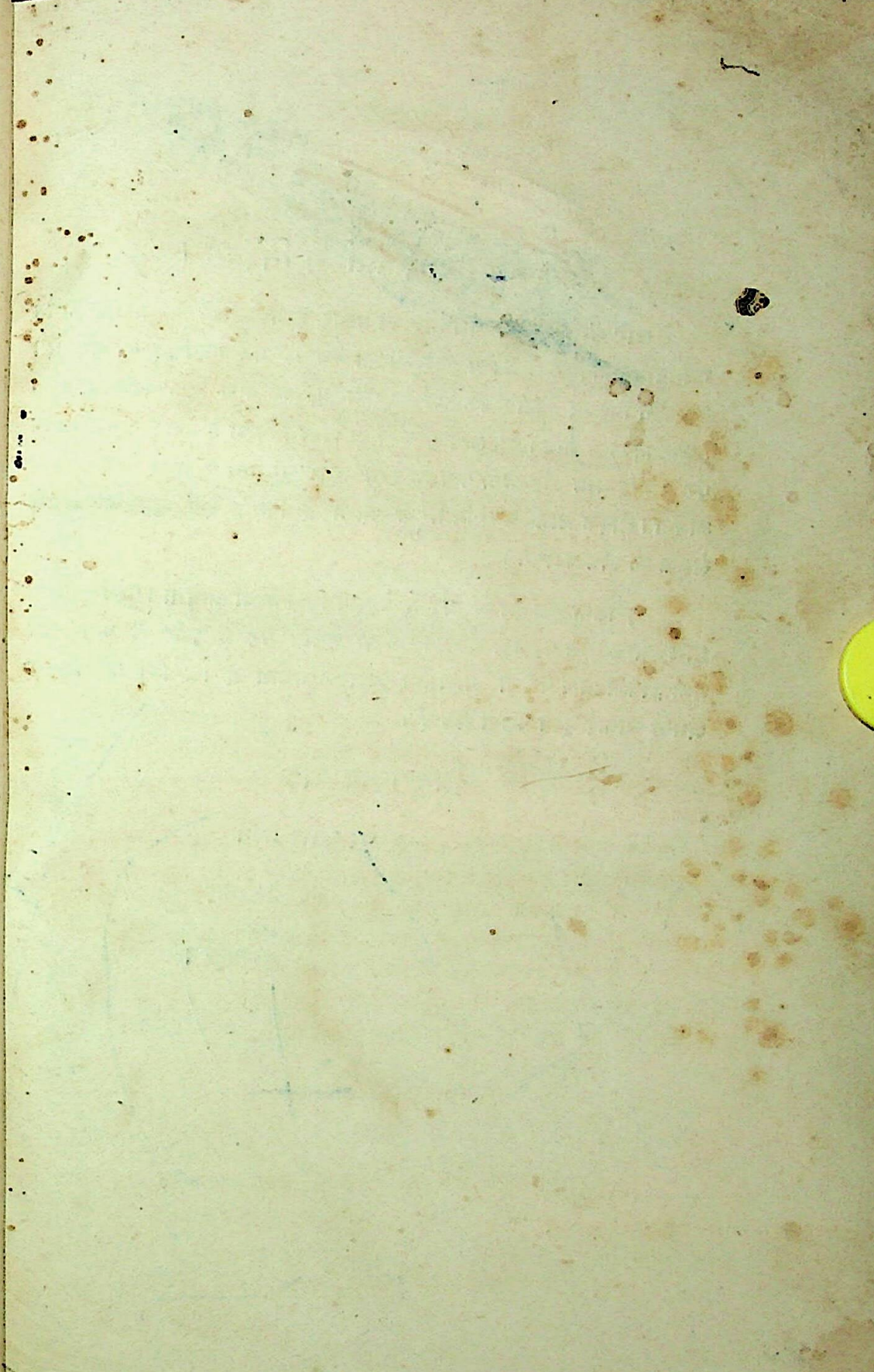
सारे संसार में ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार करने के लिये वेद प्रचार भवन ग्वालटोली कानपुर से यह यजुर्वेद संहिता प्रथमोऽध्याय प्रकाशित की गई है। लेखक ने निश्चय किया है कि कम से कम प्रत्येक मास एक अध्याय इसी प्रकार निकाली जावे। पहिले यजुर्वेद से ही प्रारम्भ किया है उसके समाप्त होने पर अथर्ववेद तथा और दोनों वेदों का इसी प्रकार सुगमता के साथ प्रचार किया जावेगा। वैदिक धर्म्म के प्रेमियों से आशा है कि वे इस शुभ कार्य्य में लेखक का हाथ बटावेंगे।

२) पेशगी भेज देने से ग्राहकों के नाम लिख लिया जावेगा। पुस्तक डाक द्वारा प्रत्येक मास पहुंचती रहेगी। वी पी. मगाने पर ६ प्रति से कम नहीं भेजी जायगी तिस पर वी. पी. मगाने वालों से प्रार्थना है कि ।=) का टिकट अर्थात् चौथाई मूल्य पेशगी भेज दें।

देवनारायण पाण्डे

वेद प्रचार भवन

ग्वालटोली

कानपुर।

यजुर्वेदसंहिता

द्वितीयोऽध्यायः

मूलमंत्र, उसका भावार्थ तथा लेखकीय
टीका टिप्पणी सहित।

ईशावास्य मिदं ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्

अध्याय ४० मंत्र १

सम्पादक तथा प्रकाशक :—
वेदाभ्यासी पण्डित देवनारायण पाण्डेय
वेद प्रचार भवन
ग्वालटोली कानपुर।

मूल्य प्रति पुस्तक =)
बाहर ।)

वार्षिक मूल्य ३)

निवेदन।

सज्जनों यजुर्वेद संहिता का पहिला भाग आपकी सेवा में पहुँच गया है उसमें मूल मंत्र के बाद पदार्थ भी दिया गया था। मेरे बहुत से मित्रों ने मुझसे अनुरोध किया कि आप इस पवित्र कार्य्य को यथा संभव शीघ्र पूरा कीजिये और पदार्थ निकाल दीजिये क्योंकि जो लोग संस्कृत जानते हैं उनको इससे कुछ लाभ नहीं है और जो संस्कृत नहीं जानते उनको भी पदार्थ से कोई लाभ नहीं है। इस वास्ते उसका रखना व्यर्थ है। मैंने भी इस पर विचार करके "पदार्थ" को निकाल दिया अब इसी तरह यह यजुर्वेद संहिता समाप्त की जावेगी।

पहिली अध्याय में कुछ प्रूफ की अशुद्धियां रह गई थीं इस बार इस पर विशेष ध्यान दिया गया है। आशा है कि मेरे मित्र इसके स्थाई ग्राहक बन कर मुझे इस शुभ कार्य्य में सहायता प्रदान करेंगे।

सम्पादक

पत्र व्यवहार करने का पता:--

श्रीमती राजकुमारी देवी

c/o देवनारायण पाण्डेय

वेद प्रचार भवन

ग्वालटोली-कानपुर।

यजुर्वेदसंहितायाम्

द्वितीयोऽध्यायः

* ओ३म् *

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वजुष्टं प्रोक्षामि वेदि-रसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्य-स्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

भावार्थ :—इस दूसरी अध्याय के प्रथम मंत्र द्वारा परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि वेदी बनाकर यज्ञ करना चाहिये और उसके लिये स्रुआ प्रोक्षणी पात्र इत्यादि रखना अत्यावश्यक है। जब इस प्रकार विधि पूर्वक यज्ञ किया जाता है तो वह अत्यन्त गुणकारी होता है उसका सत्व सूर्य की किरणों द्वारा आकाश में जाता और जल वायु को शुद्ध करता है। इस

प्रकार से यज्ञ करने में प्राणी मात्र का कल्याण होता है इस वास्ते यज्ञ करना प्रत्येक मनुष्य का प्रत्येक काल में परम धर्म है ॥१॥

लेखक :—इस मंत्र में मनुष्यों के लिये यह आवश्यक बताया गया है कि वे यज्ञ करने में वेदी तथा पात्र इत्यादि का विशेष ध्यान रखें। इसका आदेश करता हुआ परमात्मा मनुष्यों को यथार्थ में इस बात का सदोपदेश देता है कि वे जो काम करें उसको विधि पूर्वक करें। कार्य्य सम्पादन करने के लिये यथेष्ट साधनों की बड़ी आवश्यकता होती है। बिना साधन के कोई कार्य्य ठीक नहीं होता। इस वास्ते मनुष्यों का परम धर्म है कि जब तक किसी काम का पूरा साधन न हो जावे तब तक वे किसी काम में हाथ न डालें। साधन को एकत्रित करने में शक्ति भर प्रयत्न करें और उसे प्राप्त कर के फिर उस काम में हाथ डालें, तब वह काम पूरा होगा। बिना साधन के काम को प्रारंभ करके आगे उसे छोड़ देने से बड़ी हानि होती है ॥१॥

अदित्यै ब्युन्दनमसिविष्णोस्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासथान् देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानाम्पतये स्वाहा ॥ २ ॥

भावार्थ :—इस मंत्र में परमात्मा पहिले मंत्र की तरह आदेश देता है कि वेदी इत्यादि बना कर यज्ञ करना चाहिये। सदा सुन्दर और सत्य बोलना चाहिये। पक्षपात को छोड़ कर जैसे मैं सारे संसार का पालन पोषण करता हूं उसी तरह तमाम मनुष्यों को सारे संसार के साथ व्यवहार करना चाहिये ॥२॥

लेखक :—परमात्म इस मंत्र में पुनः साधनों के एकत्रित करने का ज़ोर देता है और उसके पुनरावृति से समझ लेना चाहिये कि साधन के एकत्रित करने में बड़ी सावधानी करनी चाहिये। इस मंत्र का आशय और भी गम्भीर होजाता है जब प्राणीमात्र के लिये एक ही विचार करने का सन्देश मिलता है। यह मंत्र साफ़ साफ़ इस बात का द्योतक है कि एक परमात्मा ही सारे ब्रह्मांड का मालिक है और सत्यता से उसी एक विश्वपति की पूजा अर्चा तथा उपासना करना चाहिये ॥२॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परि दधातुविश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

भावार्थ :—परमात्मा इस मंत्र में आदेश देता है कि प्रत्येक प्रकार की अग्नि को उपयोग करना मनुष्य का कर्तव्य है। इसको पैदा करके तथा उसको व्यवहार में लाने से ही मनुष्य प्रशंसा का पात्र बनता है क्योंकि इसका प्रयोग संसारी कार्य्यों में अत्यन्त लाभकारी प्रतीत होता है। इस वास्ते विधिवत यज्ञ करके प्रत्येक प्रकार की अग्नि का सदोपयोग करना प्राणी मात्र का कर्तव्य है ॥३॥

लेखक :—इस मंत्र में परमात्मा बताता है कि मैंने तीन प्रकार की अग्नि अर्थात् सुर्य्य, विद्युत और प्रत्यक्ष आग बनाई सबको सीखना चाहिये ॥३॥

वीतिहोत्रन्त्वा कवे द्युमन्त ᳯ समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

भावार्थ :—विज्ञान रूप से रहने वाली अग्नि परमात्मा ने प्रत्येक पदार्थों में बनाया है वह अत्यन्त प्यारी तथा गुणकारी है। उसका विविध प्रकार से जान कर मनुष्य मात्र को उसका उपयोग करना चाहिये।

लेखक :—परमात्मा ने सारे संसार के पदार्थों में अग्नि का संचार किया है। प्रत्येक स्थान में अग्नि किसी न किसी रूप में पाई जाती है। कहीं वह पदार्थ में छिपी है कहीं वह जाहिर है। सबका उचित रूप से उपयोग सीखना चाहिये। जिस परमात्मा ने इतनी चतुरता से सारे पदार्थों में अग्नि की रचना करके इतना बड़ा उपकार किया है उसकी उपासना करना प्राणी मात्र का परम कर्तव्य है ॥४॥

समिदसि सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहूस्थऽऊर्णम्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थन्देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्यः सदन्तु ॥ ५ ॥

भावर्थ :—जिससे जो काम सिद्धि होवे उससे उस काम को सिद्धि करने का आदेश इस मंत्र में दिया गया है। पृथ्वी पर अनेक साधन वसु रुद्र सुर्य्य के नाम पर हैं प्रत्येक का प्रयोजन अलग अलग है। सभी से संसार का कुछ न कुछ काम निकलता है। अग्नि में जो पदार्थ छोड़ा जाता है वह सुक्ष्म होकर सारे ब्रह्मान्ड में व्याप्त होकर संसार के सारे पदार्थों को शुद्ध तथा बलिष्ट बनाता है इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य को यज्ञ करना चाहिये ॥५॥

लेखक :—इसमंत्र में आठ वसु ११ रुद्र और १२ सुर्य्य बताये गये हैं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं।

वसु :—१ अग्नि २ पृथ्वी ३ वायु ४ अन्तरिक्ष ५ सूर्य्य ६ प्रकाश ७ चन्द्रमा ८ तारागण।

रुद्र :—१ प्राण २ अपाण ३ व्यान ४ उदान ५ समान ६ नाक ७ कुर्म्म ८ कृकल ९ देवदत्त १० धनंजय ११ जीवात्मा

सूर्य्य :—१२ महीने हैं।

ये उपरोक्त देव गण संसार के साधन हैं। इन्हीं से संसार का सारा काम चलता है। इन सब को भली भांति जानना और इन ज्ञान से काम लेना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है ॥५॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यसि

ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ सद आसीद । प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ सद आसीद ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञान्यम् ॥ ६ ॥

भावार्थ :--उपरोक्त मंत्र द्वारा किया हुआ यज्ञ प्रीति के साथ प्रत्येक नाम और धाम को पूर्णतया पवित्र करता है । उस विधि पूर्वक किये हुये यज्ञ को बढ़ाने तथा प्रचार करने के निमित्त निश्चय रूप से परमात्मा से प्रार्थना करना चाहिये क्योंकि यज्ञ ही से सब की अर्थात करने वाले और कराने वाले का कल्याण होता है । उसी से सब की रक्षा होती है ॥ ६ ॥

लेखक :--इस मंत्र में 'यज्ञ' शब्द की महिमा तथा उसका लाभ बतावे हुये परमात्मा सारे संसार को आदेश देताहै कि यज्ञ और काम ही सब के रक्षक हैं । सब नियम् पूर्वक यज्ञ और काम करना चाहिये ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिद्वाजन्त्वा सरिष्यन्तं वाजजितँ सम्मार्ज्मि । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

भावार्थ :—परमात्मा इस मंत्र द्वारा यह आदेश करता है कि यज्ञ का प्रत्यक्ष साधन अग्नि है यह सदा ही ऊपर को उठती है और अपने स्वभाविक गुणों से यह पदार्थों को छिन्न भिन्न कर

देती है। इसके उपयोग से अस्त्र शस्त्र में अद्भुत चमत्कार पैदा हो जाता है इस वास्ते इसको अपना रक्षक समझ कर यज्ञ विधि से इसका निर्माण करना तथा इसका उपयोग सीखना सब का कर्त्तव्य है॥ ७॥

लेखक :—अग्नि के प्रयोग से ही आज कल युद्ध विद्या का चमत्कार देखा जाता है। इसका उपयोग सीखना ही इस मंत्र का हेतु है। आशा है कि भारतवासी अपना भविष्य सुधार के लिये इस मंत्र पर ध्यान देंगे॥ ७॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्य ७ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाव क्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपेस्थषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोध्वरऽआस्थात्॥ ८॥

भावार्थ :—जिस यज्ञ में केवल सुख ही सुख है और जिसके करने से मनुष्य देवता कहा जा सकता है उस यज्ञ को शुद्ध स्नेहयुत पदार्थों द्वारा नित करना चाहिये। ईश्वर इस मंत्र द्वारा उपदेश देता है कि तुमलोग मेरी आज्ञा को मत तोड़ना। यज्ञ में जो पदार्थ हवन किये जाते हैं वे वायु और सूर्य्य द्वारा आकाश में स्थित रहते हैं। समय होने पर वे सब पदार्थ पृथ्वीपर जल रूप में आता है इस वास्ते यज्ञ कर्म नहीं छोड़ना चाहिये॥८॥

लेखक :—मनुष्य! शायद तुम समझते होगे कि यज्ञ करने में जो घी इत्यादि खर्च होता है वह नष्ट हो जाता है।

आग में गिराने से कोई लाभ नहीं होता है। वास्तव में यही देखा भी जाता है। यह लेखक जब तक विज्ञान विद्या से शून्य था तब तक यही विचार करता था। बारम्बार पढ़ने पर और सुनने पर भी मैं यज्ञ की उपयोगिता नहीं मानता था। परन्तु जबसे विज्ञान विद्या का थोड़ा थोड़ा अनुभव हुआ तब से मुझे यज्ञ के लाभ मालुम होने लगे। यदि घर में १) मासिक खर्च करके यज्ञ किया जावे तो १०) से कम का लाभ तो किसी भी प्रकार से हो जाता है। यज्ञ होने से घरकी वायु इतनी शुद्ध हो जातीहै कि कोई भी प्राणी बीमार नहीं पड़ता। इतना ही लाभ क्या कम है? रोज सुबह उठने की आदत पड़जाती है। और अनेक प्रकार से लाभ है इससे भाइयो कष्ट सहकर के भी यज्ञ करते रहो ॥८॥

अग्नेर्वेहोत्रं वेट्टत्यमवतान्त्वान्द्यावापृथिवीअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्ज्येन हविषा भुत्स्वाहा संज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९॥

भावार्थ :—इस मंत्र में परमात्मा मनुष्यों को उपदेश देता है कि मनुष्य जैसी मन में इच्छा रखकर यज्ञ करेगा उसको उसी प्रकार का फल मिलेगा। जिस प्रकार से उत्तम दूत वही बात कहता है जो उसका मालिक कहलाना चाहता है उसी प्रकार यज्ञ से भी वही फल मिलता है जो वह चाहता है।

लेखक :—इस मंत्र का आश्रय जरा टेढ़ा है। यज्ञ शब्द से इहां पर मतलब है वह भाव जिसको रख कर यज्ञ किया जावे।

यज्ञ के करते समय मनुष्य के देह में एक प्रकार की बिजली का संचार होता है। और बिजुली के संचार के कारण वह विचार जो उसके हृदय में होता है अधिक दृढ़ हो जाता है। इस कारण से ही उपरोक्त मंत्र में यह बात आई है कि यज्ञ मनोवांछित फल का देने वाला होता है ॥६॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माक ँ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोपमां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥१०॥

भावार्थ :—इस मंत्र में भी पिछले मंत्र की तरह कहा गया है कि ईंधन से प्रज्वलित अग्नि में यज्ञ की सामग्री डाल कर जो यज्ञ किया जाता है वह उसी सुख और विद्या इत्यादि का देने वाला होता है जो राजाओं के पास होनी चाहिये। इससे सब मनुष्यों को जो संसारिक सुख चाहते हैं नित्य प्रति यज्ञ करना चाहिये ॥१०॥

लेखक :—इस मंत्र में यह कहा गया है कि राजा को जो सुख होता है वह सुख प्रत्येक मनुष्य को विधवत यज्ञ करने से प्राप्त हो सकता है ॥१०॥

उपहूतो द्यौष्पितोपमां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे

ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्रतिगृह्णाम्य-ग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि॥ ११॥

भावार्थ :—परमात्मा सबका पिता की तरह पालन करने वाला है वह प्रकाश रूप है। वही सब को ज्ञान देने वाला है। उसने कई प्रकार की अग्नि पैदा की है। पेट की अग्नि में भोजन पकता है। वह उपदेश देता है कि हे मनुष्य! तुम लोग विज्ञान विद्या शोधित अन्न को पेटकी अग्नि में डालो। सुन्दर भोजन करने से तुम्हारा शरीर पुष्ट रहेगा। इसीसे प्राण अपान वायु का संचालन होता है। संसार में सारे पदार्थ मौजूद हैं। उसको पुरषार्थ से पैदा करके भोगना चाहियें। अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये नियमानुसार नित्य प्रति प्रार्थना करनी चाहिये। ११

लेखक :—इस मंत्र में उपासना तथा भोजन पर विचार किया गया है। शुद्ध अन्न ही का भोजन करना चाहिये शुद्ध अन्न से मतलब है वह अन्न जो शुद्ध कमाई से पैदा किया हुआ हो और जो विज्ञानिक रीति से भोजन करने के योग्य हो। भोजन ही शरीर की नियमित रूपसे कायम रखता है। अगर भोजन का प्रबन्ध ठीक रक्खा जावे तो मनुष्य कभी बीमार नहीं पड़ सकता नियमानुसार से यह मतलब है कि प्रत्येक १५ दिन में एक दिन हलका खाना खाना चाहिये। अगर सम्भव हो तो १५ दिन के बाद एक दिन कुछ न खाय एकादशी इत्यादि का व्रत पुराणों में इसी मंत्र से लिया गया है। परन्तु वहां पर धर्म

की चर्चा छेड़कर व्रत के प्रभाव को नष्ट कर दिया गया है। नियमानुसार भोजन तथा उपासना करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिन्तेन मामव॥ १२॥

भावार्थ :—इस मंत्र द्वारा यज्ञ करने की क्रिया का विधान बताया गया है। परमात्मा उपदेश देता है कि जिन जिन लोगों ने विधि पूर्वक यज्ञ किया है उनकी रक्षा उससे हुई है। जो नित्य यज्ञ करता रहेगा उसकी भी सदा रक्षा होती रहेगी। मनुष्यों को चाहिये कि यज्ञ करते समय मुझसे अपने कल्याण की कामना करते रहें॥ १२॥

लेखक :—वैदिक धर्मावलम्बियों को यह बात भली भांति मालूम है कि परमात्मा ने अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा इन चार ऋषियों द्वारा वेद का सदोपदेश मनुष्यों के लिये किया है। उपरोक्त चारों ऋषि अपने अपने दिव्य गुणों के कारण इसके अधिकारी थे। वे लोग बराबर यज्ञ किया करते थे। उनकी रक्षा यज्ञ से नित्य हुआ करती थी उसी प्रकार जो यज्ञ नित्य करता रहैगा उसकी रक्षा बराबर होती रहेगी यज्ञ करते रहने से मनुष्य में अद्भुत तेज आ जाता है। तेज से उसको अपनी रक्षा के सब मार्ग सुगम हो जाते हैं॥ १२॥

मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्यबृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ ꣳ समिमन्दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ॥ १३॥

भावार्थ :—परमात्मा इस मंत्र में मनुष्यों से कहता है कि मन बड़ा चंचल है। इसको हमेशा यज्ञ अर्थात कर्म में लगाये रहना चाहिये। यज्ञ का विधिवत पालन करने और नित्यप्रति कर्म में लगे रहने ही से मन की चंचलता दूर हो सकती है धर्म करो और औरों से धर्म कराते रहो। धर्म करते रहने से संसार का भ्रम दूर हो कर उसमें प्रकाश आसक्ता है। धर्म से ही मनुष्यों को हर प्रकार की शान्ति प्राप्त होती रहती है ॥ १३ ॥

लेखक :—मनुष्यो! आप जानते ही हैं कि मन बड़ा चंचल है। एक मिनट में कलकत्ता से बम्बई और बम्बई से अमेरिका जा सकता है। जब तक मन चंचल रहता है तब तक उससे कोई काम ठीक नहीं हो सकता है। इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि पहिले अपने मन की चञ्चलता को दूर करे क्योंकि जब तक मन स्थिर नहीं होता तब तक उसमें अनेक प्रकार के विकार होते रहते हैं और विकारों के कारण कोई काम उत्तमता से हो ही नहीं सकता। इस वैदिक मंत्र में योगकी ओर भी संकेत है ॥ १३ ॥

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चाचप्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवा ꣳ संवाजजित ꣳ संमार्ज्मि ॥ १४ ॥

भावार्थ :—जो लोग इस संसार में यज्ञ तथा मेरी उपासना करते रहेंगे उनको अनेक प्रकार का आनन्द होगा वे ही इस संसार में विजयी होकर सारे दुष्टों का हनन करेंगे। कर्महीन और यज्ञहीन होने से अपना सर्वस्व नष्ट हो जाता है। परमात्मा स्वयं अनेक प्रकार से यज्ञ और कर्म करता हुआ सबको आदेश देता है कि तुम लोग सदा मेरा ही अनुकरण करते रहो। अगर तुम लोग सिर्फ जबान से कहते रहोगे कि यज्ञ करो तो उसका कुछ भी परिणाम न होगा॥ १४॥

लेखक :—पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥ तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में यह चौपाई इसी वेद मंत्र से लेकर कहा है। केवल कहने से कुछ काम नहीं चलता है। अगर ईश्वर केवल उपदेश देकर चुप रहजाता तो शायद उसकी बात कोई भी नहीं मानता। वह तो बिना बाणी के सब से कहता और बिना हाथ पैर के सब करता रहता है। जब तक ऐसा न होगा तब तक कुछ लाभ नहीं होगा जैसे आज कल के सुधार करने वाले लोग बहुत चिल्लाते हैं मगर उनकी कोई सुनता ही नहीं क्योंकि वे लोग जिस बातका उपदेश देते हैं स्वयं वे नहीं करते। इस मंत्र में कहा गया है कि जो कहो सो करो॥ १४॥

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवे-

नापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेष वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

भावार्थ--प्रकृति के भिन्न भिन्न परिमाणुओं को भिन्न भिन्न रूप से मिला कर उससे अनेक प्रकार की चीजें बनाई जा सक्ती हैं। मनुष्यो ! सब प्रकार के विज्ञान को सीखो और उससे संसार के कल्याण के लिये सब चीजों को बनाओ । दुष्ट जीवों को हनन करो और जो लोग विद्याहीन तथा यज्ञ हीन हों उनको ज्ञान दो जिससे वे लोग अपना कर्म कर सकें । कौन सी बात किस तरह की की जाती है इसका विधिवत मनन करो। मनन करने से जो विचार पैदा हो उसको व्योहार में लाओ ॥ १५॥

लेखक--संसार में जल अग्नि तथा वायु इत्यादि के परस्पर मेल से अनेक प्रकार की चीजों का बनाया जाना संभव है। विज्ञान विद्या को सीख कर ऐसे यंत्र बनाये जा सकते हैं जिससे अपना सब काम सुगमता से हो और दुष्टों का नाश हो जाय।

रेल, तार, हवाईजहाज वगैरह का इस मंत्र द्वारा संकेत किया गया है। हमारे देश में इस समय इसका अभाव है। यदि वैदिक धर्मावलम्बी प्रयत्न करें तो देश में इन चीजों का बनाया जाना कोई कठिन बात नहीं ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवीमित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्त ँ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब यज्ञ किया जाता है तो उसके परिणाम हवा में मिल जाते हैं। हवा शुद्ध होकर मेघ मण्डल में जाकर सूर्य्य की किरणों से खिंचे हुए जल को शुद्ध करता है और इस से वर्षा होती है। वर्षा होने से सारे संसार की औषधियां पैदा होती हैं और संसार का सब काम चलता है अगर यज्ञ न किया जावे तो सारे संसार में अकाल पड़ जावे। वेद मंत्रों को पढ़कर ही यज्ञ करना चाहिये क्योंकि उससमय मंत्रों के पढ़ने से मनुष्य के दिल में उसका भाव जमता जाता है भाव को हृदय में पुष्ट करने से उसका फल मिलता है ॥ १६ ॥

लेखक—लोग कहा करते हैं कि यज्ञ करने से व्यर्थ में घी आग में गिराया जाता है। भला इससे क्या लाभ होगा। सच पूछो तो बात ऐसी नहीं है यज्ञ से बड़ा लाभ होता है। यज्ञ न होतो वर्षा कभी भी नहो यज्ञ से वर्षा होती है और अनाज पैदा होता है इस वास्ते यज्ञ करना चाहिये। इस मंत्र से मिला जुला मंत्र पहिली अध्याय में आचुका है। मंत्र पढ़कर यज्ञ करना चाहिये क्यों कि मंत्र के पढ़ने से मंत्र का भाव हृदय में जम जाता है उससे विशेष लाभ होता है ॥ १६ ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः तन्त एतमनुजोषं भराम्येष मेत्त्वदपचेतयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

भावार्थ—मैं (परमात्मा) सब में व्यापक हूं। सब चीजों का प्रकाश मेरे से ही हुआ है। सब मनुष्यों को चाहिये कि वे मेरी उपासना करते रहें। उपासना से सारे सुख मिल सकते हैं। जो ऐसा नहीं करता उसको सुख प्राप्त नहीं होता। कई प्रकार की अग्नि का आस्तित्व है। सब में निराला गुण भरा है। सब को उचित रूप से उपयोग करना सीखो। उचित उपयोग से तुम्हारे काम की वस्तुएं बन सकती हैं। पहिले मंत्र में जो बात कही गई है उसकी पुष्टि इस मंत्र द्वारा होती है ॥ १७ ॥

लेखक—इस मंत्र में उपासना की विशेषता कही गई है। नित्य प्रति उपासना करने वाले लोग संसार में सदा सुखी रहते हैं। उपासना तथा विज्ञान के बल से संसार का सारा काम उत्तमता के साथ हो सकता है। विज्ञान विद्या द्वारा प्राकृति के सब लक्षण सीखे जा सकते हैं। प्राकृति के लक्षणों को जान लेने से सारा काम हो सकता है। इस वास्ते उपासना करना और विज्ञान सीखना संसार में सब का परम कर्तव्य है ॥ १७ ॥

स ꣳ स्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्व ꣳ स्वाहा वाट् ॥१८

भावार्थ--इस मंत्र द्वारा परमात्मा सब को उपदेश देता है कि जो लोग मेरे बताये मार्ग पर चल कर वेद विद्या का प्रचार पुषार्थ के साथ करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं।

प्रत्येक वस्तु का असली गुण सीखो और उसका ठीक ठीक उपयोग करो। ऐसा करना ही मनुष्य मात्र के लिये सुख की जड़ है ॥१८॥

लेखक--यह बड़ा विचित्र मंत्र है। इसके अर्थ करने में बड़ी सावधानी का जरूरत है। जो लोग परमात्मा की शिक्षा को मान कर उसका पालन करेंगे उनका सदा सुख होगा। विपरीत दशा में जाने से अत्यन्त दुख होगा। सज्जनों। इस मंत्र द्वारा आप को ईश्वर स्वयं आज्ञा देता है कि तुम न केवल वेद वाक्य समझो वरन सब को समझाओ। तुम ऐसा काम करो जिससे मेरे बताये हुए मार्ग का ज्ञान सब को होता रहै। ऐसा करने से तुमभी सुखी रहोगे और सारा संसारसुख उठावेगा ॥१८॥

घृताची स्थो धुर्य्यौ पात ꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमश्चत उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टेमे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

भावार्थ:--यज्ञ ककरने ही से मनुष्य को असली सुख मिल सकता है। यज्ञ का मुख्य अङ्ग सुख का असली स्वरूप है। इसी से सब जगत की पालन होती है। परमात्मा का उपासना और यज्ञ से ही सब को सब प्रकार का सुख मिल सकता है। यही

कल्याण का साधन है। तुम सब लोग मेरे समीप आओ। इसी समीप आने का नाम उपासना है। यज्ञ करने वाले बनो और सुख से अपना जीवन व्यतीत करो। यज्ञ का अनुष्ठान करके सुख का अनुभव करो॥ १९॥

लेखक :—इस मंत्र से अगले मंत्र की पुष्टि होती है परमात्मा का आदेश है कि सुख के लिये यज्ञ करना अत्यन्तावश्यक है। बिना यज्ञ किये कोई मनुष्य यथोचित सुख का प्राप्त कर नहीं सक्ता इस वास्ते यज्ञ की अनेक प्रकार के स्वरूपों की भली भांति सीख कर उसका अनुष्ठान करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिये जो आदमी सुख चाहता है और यज्ञ कर्म से रहित है उसकी आशा कभी पूरी नहीं हो सक्ती बिना यज्ञ के सुख चाहना मानों आकाश से फूल तोड़ने की इच्छा करनी है॥ १९॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या अविषन्नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥ २०॥

भावार्थ :—परमात्मा सब का पालन पोषण करने वाला है उसी ने सारे जगत की रचना की है। वह सब को निर्विघ्न आयु देने वाला है। सब को दुख से रक्षा करना उसी का काम है। जो यज्ञ सदा करता है। उसको वह परमात्मा हर तरह से बचाता है। मैंने जो अनेक प्रकार की अग्नि बनाई है उससे

मनुष्य मात्र का कल्याण हो सकता है। वह यज्ञ करके वालों को बड़े बड़े दुखों की पाशों से रक्षा करता है। हमारे वास्ते अन्न आदि पदार्थ उसीने बनाया है। यज्ञ से अन्न की बृद्धि होती है। इस वास्ते सर्वत्र व्यापक यज्ञ को नित्य प्रति करना हमारा और सबका परम धर्म है॥ २०॥

लेखक :—परमात्मा इस मंत्र में यह बताता है कि कई प्रकार की अग्नि मैंने पैदा की है। बिजुली, सूर्य्य अथवा प्रत्यक्ष अग्नि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सबका आस्तित्व मुझसे ही है। मैं सब में व्यापक हूं। इस वास्ते मेरी उपासना करना सब का परम कर्तव्य है। मेरी तरह नित्यप्रति यज्ञ करने वाला मनुष्य सदा सुखी रहता है। मेरा सब से मुख्य काम यज्ञ करने वाले की रक्षा करना है।

जब यज्ञ का यह प्रभाव है और जिस यज्ञ का कारण तर्क करने से ठीक मालूम होता है फिर उस यज्ञ को न करके हम लोग बड़ी भूल करते हैं। इस मंत्र का मुख्य आदेश सबको यज्ञ और उपासना की ओर खीचना है॥ २०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदो भवस्तेन मह्य वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञ ७ स्वाहा वाते धा॥ २१॥

भावार्थ :—परमात्मा ज्ञान स्वरूप है। वही चराचर का पालक है समस्त विद्वानों ने उसी परमात्मा से ज्ञान प्राप्त किया है। जिसको विशेष ज्ञान की इच्छा हो वह उसकी विशेष उपासना करे। उसका कहा हुआ ज्ञान जिस पुस्तक में इस समय पाया जाता है उसका नाम भी वेद है। उसको पढ़ना पढ़ाना प्राणी मात्र का परम कर्तब्य है। उसी से सब का हित साधन हो सकता है। बिना उस दिव्य ज्ञान के किसी को असली सुख नहीं मिल सकता। वेद विद्या को जान करके उसकी क्रियाओं का अनुष्ठान करना परम कल्याण कारक हो सकता है ॥ २१ ॥

लेखक :—लोग कहा करते हैं कि इस कलियुग में वेद नहीं है। ऐसा कहने वाले वेद को कोई साकार अथवा बनाई हुई ऐसी एक चीज समझते हैं जो दुनियां से पृथक की जा सकती है। यह उनकी भूल है। वास्तव में वेद नाम है उस कानून का जिसको परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों के लिये बनाया है किसी पिछले मंत्र में बताया गया है कि चार ऋषियों द्वारा वेद की उत्पत्ति हुई है। परमात्मा ने उन्हीं के हृदय में ज्ञान का उपदेश किया। वही सबको पालता है। उसी के ज्ञान से सबको ज्ञान प्राप्त होता है। उसका ज्ञान संसार से कभी अलग नहीं किया जा सकता। सारे संसार को विधिवत चलाने के लिये उसके ज्ञान की बड़ी जरूरत है। आज हमारे देश में अनेक प्रकार के पाखण्ड फैले हुये हैं इसीसे देश का नाश होगया। यदि वेदों का प्रचार होतो देश की दशा तुरन्त सुधर जावे ॥ २१ ॥

संबर्हिरङ्क्तां हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। सामिंद्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

भावार्थ :—जब मनुष्य हवन करता है तब हवन की सामग्री आग में पड़कर वायु में मिल जाती है। आकाश के सारे पदार्थों को सुगन्धित कर देती है। उससे बारहो आदित्य आठो वसु इत्यादि सुगन्धित हो जाते हैं और इस कारण उनसे संसार का बड़ा लाभ होता हैं। इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य को यज्ञ करना चाहिये ॥ २२ ॥

लेखक :—इस मंत्र में हवन करने की विशेषता है। घी कपूर इत्यादि से जब अग्नि प्रज्वलित होती है तब वायु में सुगन्ध हो जाती है और सुगन्धित वायु से आकाश की सारी तत्वें मनुष्यों के लिये यथायोग्य सुखप्रद हो जाती हैं। इसवास्ते प्रत्येक मनुष्य को हवन करना चाहिये ॥ २२ ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥

भावार्थ :—यज्ञ को कोई मनुष्य नहीं छोड़ता। जो कोई यज्ञ करता है वह इसे सुख देता है। जो आदमी यह छोड़ देता है वह राक्षस है। उसका सब पदार्थ राक्षसी है और राक्षसों के लिये है ॥ २३ ॥

लेखक :—यह मंत्र बड़ा विचित्र है। इसमें साधारण तौर कुछ प्रश्नोत्तर हैं अर्थात कौन यज्ञ छोड़ता है। किस प्रयोजन से यज्ञ किया जाता है। परन्तु वास्तव में इसका अर्थ विलक्षण है अर्थात जहां यह मालूम होता है कि कौन यज्ञ छोड़ता है उसका मतलब है कि किसी को यज्ञ छोड़ना नहीं चाहिये। इसी से सारे संसार का काम चलता है। ॥ २३ ॥

संवर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स ꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

भावार्थ :—प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वेद जो समस्त ज्ञान का देने वाला है पढ़े और पढ़ाये। बिना वैदिकज्ञान के संसार में किसी काम की सिद्धि नहीं होती। वैदिक ज्ञान सीख कर अपने बुद्धि को बढ़ावे। शरीर को सब काम के करने का साधन समझ कर उसे बलिष्ट बनावे फिर अपने अन्तः करण की शुद्धि का उपाय करे तन, मन तथा बुद्धि से संसार में सुन्दर लक्ष्मी की प्राप्ति करे क्योंकि बिना रुपया पैसा प्राप्त किये संसार में कोई काम हो नहीं सक्ता ॥ २४ ॥

लेखक :—इस मंत्र में ४ बातों का उपदेश है। पहिले बाल्यावस्था में वेद विद्या पढ़कर ज्ञान सीखे फिर गृहस्थ होकर शरीर केवल को बनाये रहे, बुद्धि की शुद्धि करे, अर्थात जो काम करें उसे सोच समझ कर करे, जिससे वह काम भी पूरा हो और

तुम्हें उस काम के करने में विशेष कष्ट नहो। चौथी बात यह है कि अपना अन्त करण शुद्ध करके यथेष्ठ लक्षमी कमाओ, बिना द्रव्य के संसार में कोई काम हो नहीं सकता। संसार में अच्छी तरह रहने के लिये ऊपर लिखी चार बातों की बड़ी जरूरत है। जिसने ऐसा न किया वह संसार में सुख से अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता॥ २४ ॥

दिवि बिष्णुर्व्यक्रस्त जागतेन छंदसा ततो निर्मक्तो योऽस्मास्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्तारिक्षे बिष्णुर्व्यक्रस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। पृथिव्यां बिष्णुर्व्यक्रस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो स्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः संज्योतिषाभूम॥ २५ ॥

भावार्थ :—संसार में यज्ञ किया हुआ पदार्थ सूर्य्य की किरणों से मिल कर आकाश में स्थिर परिमाणुओं से मिल जाता है। ऐसा करने से वायु और आकाश के परिमाणु शुद्ध होजाते हैं। शुद्ध जल की वर्षा उचित मात्रा में हुआ करती है। वर्षा होने से काफ़ी तायदाद में अन्न पैदा होता है। जब मनुष्य को शुद्ध भोजन पेट भर मिलता है तो उसका शरीर बलवान रहता है। बुद्धि भी ठीक रह सकती है बुद्धि ठीक रहने से उसका अन्तः करण ठीक रहेगा और संसार के सब काम कुशलता से होसकते

हैं पुन लक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है। इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह नित्यप्रति विधिवत यज्ञ किया करे॥ २५॥

लेखक :—२४ वें मंत्र में जो उपदेश दिया गया है उसे कार्य्यान्वित करने के लिये इस २५ वें मंत्र का उपदेश है। शरीर मन बुद्धि अन्तः करण बलिष्ठ और पवित्र कैसे रह सकते हैं उसी का उपदेश देते हुये परमात्मा ने इस बात को बताया है कि सब काम ठीक करने के लिये यज्ञ और उपासना करने की बड़ी जरूरत है बिना यज्ञ और उपासना किये संसार का कोई काम मनुष्य ठीक तौर नहीं कर सकता। अतः सब मनुष्यों को विधि-वत यज्ञ तथा उपासना करनी चाहिये॥ २५॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्च्चोदा असि बर्च्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २६॥

भावार्थ :—परमतमा सब का बनाने वाला है। उसको किसी ने नहीं बनाया है वह ज्ञान स्वरूप है। उसमें तेज है समस्त तेजों का प्रदान करने वाला वही एक परमात्मा है। वही सब की आत्मा है उसके उपदेश को सब को धारण करना और कार्य्यान्वित करना चाहिये अर्थात उसके उपदेश को मान कर उसी प्रकार से काम करना चाहिये॥ २६॥

लेखक :—इस मंत्र द्वारा परमात्मा को सब बनाने वाला माना गया है। बहुत से लोग इस मंत्र की व्याख्या में उलझ कर इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि वेद मनुष्यों का बनाया हुआ है

क्योंकि इस मंत्र के शब्दों से इसी बात की धारणा होती है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। क्योंकि जब परमात्मा ने ऋषियों को ज्ञान दिया और उस ज्ञान से प्रकाश पाकर ऋषियों ने उस उपदेश देने वाले परमात्मा को उसी के शब्दों में संबोधित किया तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वेद मनुष्य कृत है। जैसे असली आग के रूप को बदल कर दियासलाई बनाई गई और उससे फिर आग बनाई गई। इससे कोई यह तर्क नहीं कर सकता कि दियासलाई ही आग की बनाने वाली है। उसी तरह इस मंत्र से कभी यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि वेद मनुष्यों ने बनाया है। हां किताब तो अवश्य मनुष्यों ने बनाई ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपत सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेहं गृहपतिना भूयास ꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः अस्थुरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शत ꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥

भावार्थ :—परमात्मा ही सब के घरों का मालिक है क्योंकि उसी ने सबको बनाया है। वही सबका रक्षा करने वाला है। उसी में सारी बातें स्थिर हैं घरके सब काम उसी की आज्ञानुसार ठीक हो सकते हैं। उसकी आज्ञा का पालन करके १०० वर्ष तक सब आदमी जी सकते हैं ॥ २७ ॥

लेखक :—इस मंत्र में भी बड़ी विशेषता है इसके शब्दार्थ से भी यही मालूम होता है कि वेद मनुष्यों का बनाया हुआ है। परन्तु विचार करने से यह तर्क सिद्ध नहीं होता इसकी दलील

हम पिछले मंत्र में कर चुके हैं। अगर परमात्मा की आज्ञा मान कर घरका काम काज किया जावे तो वह सुख देने वाला हो सकता है। मनुष्य १०० वर्ष तक जी सकता है इससे भी अधिक जी सकता है इसके लिये बहुत प्रमाण दिये जा सकते हैं। इस में (नः) शव्द जो आया है उसका अर्थ घरमें रहने वाले समस्त स्त्री पुरुषों से है ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि। इदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

भावार्थ :—परमात्मा अग्नि स्वरूप है अर्थात उसी एक ईश्वर से समस्त तेज प्रकाशित होता है। वह प्रत्येक काम को नियमानुसार चलाने वाला है। हम सब जहां तक होसके उसकी तरह रहने का प्रयत्न करें। जो मनुष्य जिस प्रकार काम कर चुका है अर्थात जैसा जिसका कर्म पूर्व जन्म में हुआ है वैसा ही भोग परमात्मा मनुष्य को इस जन्म में देता है और वह उसी कर्म का फल भोग रहा है ॥ २८ ॥

लेखक :—इस मंत्र में पुनर्जन्म के मसले पर बहस है। इस मंत्र से इस बात की पुष्टि है कि परमात्मा कर्मानुसार सब को फल देने वाला है। यही परमात्मा का सब से बड़ा न्याय है। उसने न्याय से ही अमीर ग़रीब तथा अनेक प्रकार के जीव जन्तु इस संसार में बनाये हैं। एक के देखने से दूसरों की योनि चाहे जैसी खराब हो परन्तु उसे वही अच्छी मालूम होती है इसका कारण परमात्मा का सच्चा न्याय ही है परमात्मा जन्म देते समय जीव

को उसके कर्मों को स्पष्टरूप से बताकर कहता है कि तुमने जो कर्म किया है उसका फल यह है। चूंकि उस न्याय में बिलकुल सत्यता रहती है इस वास्ते जीव उसे हर्ष के साथ स्वीकार कर के फिर अपने आचरण को सुधारने की प्रतिज्ञा करता है। इसी कारण खराब से खराब योनि में जन्म पाकर भी जीव सुखी रहता है। यही परमात्मा का सच्चा न्याय है॥ २८॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः॥ २९॥

भावार्थ :—इस मंत्र में भी यज्ञ का बरणन किया गया है। वेद वाक्य से शुद्ध घी बनस्पति इत्यादि से नित्य यज्ञ करना चाहिये। सारा काम मनुष्य को इस रीतिसे करना चाहिये जिससे सुख की वृद्धि हो और दुष्ट मनुष्यों का शीघ्र नाश होजाय।२९।

लेखक :—लोग कहा करते हैं कि हिन्दू धर्म का मूल सिद्धान्त अहिंसा है। ठीक है। मैं भी इसे मानता हूं। परन्तु अहिंसा शब्द का अर्थ विचित्र है दुष्ट जनो की रक्षा करना अहिंसा नहीं है। उनके रहने जो कष्ट होता है उसका भागी वही अहिंसा का गलत मतलब समझने वाला आदमी होता है। वेद के अनेक मंत्रों में इसबात का उपदेश है कि दुष्ट जीवों का नाश कर देना चाहिये। वैदिक धर्मावलंबियों को इस प्रकार के मंत्र नोट करके मरी हुई और भ्रम में पड़ी हुई हिन्दू जनता को उठाना चाहिये। उसको अहिंसा का ठीक मतलब बताना चाहिये। नहीं तो अहिंसा शब्द से ही हिंदुओं तथा हिंदुस्तान

का नाश हो जायगा। शक्ति रखते हुये क्षमा करना मनुष्य को शोभा देता है। बलहीन मनुष्य को कोई क्षमा करने वाला नहीं कह सकता। भारत आज बलहीन है उसे बल प्राप्त करना चाहिये।

फिर अहिंसा और क्षमा सब उसे शोभा देगा ॥२६॥

ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

भावार्थ--इस मंत्र में भी बड़ी विशेषता है। परमात्मा मनुष्यों को आदेश देता है कि जो आदमी अपने मन के असली भावों को छिपाकर पाप का आचरण करता है और जो अपने सुख के लिये दूसरों की चीजों को हरण किया करता है उसे मैं उसके कर्मों का फल देकर उसे नीच योनि में पैदा करता हूँ और संसार से भी शीघ्र उसे दूर कर देता हूं ॥३०॥

लेखक :--पिछले मंत्र में जो बात कही गई है इस मंत्र में उसकी पुष्टि की गई है। इस मंत्र में एक बात की विचित्र विशेषता हैं और वह (रूपाणि प्रति मुंचमाना) पद पर विचार करने से मालूम होती है। पद का अर्थ है अपने हृदय में पैदा हुयें भावों को छिपाकर उससे विपरीत काम करने वाला जीव इससे यह बात झलकती हैं कि जीव का स्वभाव शुद्ध है। उसके हृदय में जो भाव पैदा होता शुद्ध होता है परन्तु मनुष्य उसे छिपाकर उससे विपरीत काम करता है और तब वह

पापात्मा हो जाता है। जीव का स्वभाव शुद्ध है। अनुभव से भी यही बात सिद्धि होती है। यदि मनुष्य अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा मानकर काम करें तो उनको सदा सुख होसकता है ॥३०॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथा भागमावृषायध्वम्। अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥३१॥

भावार्थ:—परमात्मा सब को आदेश करता है कि हे विद्वान लोगो तुम सब लोग अपने बुद्धि के अनुसार कर्म करो और जो उससे फल मिले उसको आनन्द के साथ भोगो और उसी में मस्त रहो। ऐसा ही बारंबार करो। ऐसा करने ही से सब को सुख होता है ॥३१॥

लेखक--इस मंत्र में बड़ा आनन्द मिलता है। जो जैसा करता है उसे मैं उतना ही फल देता हूं। न्याय इसी का नाम है। मनुष्य को चाहिये कि परमात्मा जो दे उसमें संतोष करके अपने पुरुषार्थ को बढ़ावे। बहुत से लोग इस मंत्र का उलटा अर्थ समझते हैं और यह कहा करते हैं कि जो तकदीर में होगा वही मिलेगा मैं समझता हूं कि इसी मंत्र का भावार्थ न समझकर कुछ चतुर परन्तु आलसी लोगों ने जनता के दिल में यह बात भरी है कि जो तक़दीर में होगा मिलेगा। परन्तु वास्तव में इस मंत्र का भावार्थ यही है जो मैंने और स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है। आचार्य्यों ने इस मंत्र पर बड़ी विवेचना की है परन्तु मैं तो कोई बात इसमें ऐसी नहीं पाता जिसको लेकर इतना ऊधम मचाया जावे। मंत्र के भावार्थ को इधर उधर करके

उल्टा अर्थ निकाल कर अपना स्वार्थ साधन करना और बात है ॥३१॥

नमो वः पितरो रसाय नमो व पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मै तद्वः पितरो वासः ॥ ३२॥

भावार्थ :—अनेक प्रकार के सुख भोगने वाले पदार्थों के बनाने तथा उसका पालन करने के निमित्त तुझको नमस्कार है। घोर कष्ट के निवारणार्थ जो परमात्मा का प्रसंशनीय उद्योग होता रहता है उसके लिये नमस्कार है ॥३२॥

लेखक :—यह मंत्र बड़ा ही विचित्र है। संसार में जो सुख देने वाले पदार्थ हैं उनके बनाने और दुख देने वाले कारणों को विनाश करने के लिये परमात्मा को नमस्कार है। यही इसका असली भावार्थ है परन्तु इसका उलटा अर्थ सिद्धि किया गया है। और उसका कारण अपना स्वार्थ साधन है। इसी मंत्र से श्राद्ध इत्यादि की व्यवस्था करके लोगों ने अपना उल्लू सीधा किया है इसमें पितर शब्द आया है उसका अर्थ विद्वान न करके मरे माता पिता का अर्थ लिया जाता है और मरने पर श्राद्ध नाम की एक फजूल रसम अदा की जाती है यदि विशेषता के साथ इस मंत्र पर विचार किया जावे तो जो अनर्थ

भारतवर्ष में हो रहा है और जिससे सीधे २ आदमियों को ठग कर चतुर लोग अपना मतलब बनाया करते हैं वह बिल्कुल हट जावे। इस मंत्र का आशय जनता में बताने के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये ॥३२॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥ ३३ ॥

भावार्थ--हे विद्वान लोगो तुम इस नवीन ब्रह्मचारी को जो फूल की माला पहिने है उसे अपने पास रख कर उसे एक सच्चा आदमी बनाओ जिससे इसके हृदय मे सत और असत का विवेक हो ॥ ३३ ॥

लेखक :--इस मंत्र पर तनिक सा विचार करने से साफ मालूम हो जायगा कि "पितर" शब्द का अर्थ विद्वान जीवित मनुष्य है। क्योंकि अगर इसका अर्थ मरे हुये मनुष्यों से लिया जावे तो कदापि यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई अपने छोटे से बच्चे को मरे हुये आदमियों के पास लेजा कर यह कहेगा कि तुम इस लड़के को अपने पास रक्खो। इससे अब आगे कोई कठिनाई या धोखा पितर शब्द से होना नहीं चाहिये। बहुत से लोगो ने तो हठ में आकर इसी मंत्र से बलिदान करने की क्रिया को वेदोक्त सिद्धि करने का प्रयत्न किया है। जनता को विशेष ध्यान रखकर अब धूर्तों के धोखेमें न आना चाहिये और सदा जीते जागते विद्वानों का आदर करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालंपरिस्त्रुतम् स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

भावार्थ–विद्वानों को उत्तत उत्तम पदार्थ खिलाकर घी दूध जल औषधि मिठाई इत्यादि से सन्तुष्ट करके उनसे शुभ गुणों को सीख कर दूसरे के धन के लेने की इच्छा को मनसे हटाकर सब लोग सुख पासकते हैं ॥ ३४ ॥

लेखक:–इस मंत्र में भी पिछले मंत्र की तरह लोगों को धोखा हुआ। इसका भी कारण यही है कि पितर शव्द का अर्थ मरे हुये लोगों से लिया गया। अगर उसका अर्थ संसार के जीवित विद्वान से लिया जावे तो कपट का सारा भ्रमजाल टूट जावे। यह कहा जासकता है कि विद्वानों को उपरोक्त पदार्थ क्यों देना चाहिये तो इसका उत्तर यह है कि यदि विद्वानों को अपने उदर निमित्त विशेष प्रयत्न न करना पड़ेगा तो वे संसार के उपकार के लिये बहुत बड़ा काम कर सकते हैं अपनी बुद्धि से विज्ञान विद्या का विकाश करेंगे। विद्या के विकाश से संसार का बड़ा उपकार हो सकता है। कैसा सुन्दर मंत्र है परन्तु स्वार्थ साधन के लिये इसका अर्थ उलट दिया गया ॥ ३४ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः।

सन् १९२७ ई०

दूसरे अध्याय का सारांश।

पहिले अध्याय में मनुष्यमात्र के लिये यज्ञ करने का उपदेश किया गया है। प्रातःकाल उठने के वाद मनुष्य को शौचादि से निवृत होकर स्नान के पश्चात् यज्ञ (हवन) कर के अपने घर की वायु को शुद्ध कर लेना चाहिये।

दूसरे अध्याय में ईश्वरोपासना करने का आदेश दिया गया है। हवन के वाद प्रत्येक मनुष्य को कुछ देर के लिये एकान्त में बैठ कर नित्य प्रति उपासना करनी चाहिये। इसके लिये ही "संध्या" के मंत्र वेद मंत्रों ही में से चुन चुन कर अलग किये गये हैं। संध्या करने तथा ईश्वरोपासना करने से क्या लाभ है वह उसी आदमी को मालूम होगा जो नित्य प्रति विधि पूर्वक ईश्वरोपासना करता है। लिखने के लिये इस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है परन्तु यदि संध्या न की जावेगी तो केवल इसके लाभों को पढ़ने से कोई आनन्द अथवा लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यदि मनुष्य को अपनी उन्नति करनी स्वीकार हो तो उसका परम कर्तव्य है कि विधि पूर्वक नित्य प्रति संध्या करके इसके गुणों का अनुभव करै यही इस दूसरी अध्यांय का सारांश है।

देवनारायण पाण्डेय

वैदिक धर्मावलंबियों से निवेदन।

सारे संसार में ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार करने के लिये वेद प्रचार भवन ग्वालटोली कानपुर से यजुर्वेद संहिता प्रथमोऽध्याय प्रकाशित हो चुकी है अब नियमानुसार दूसरा अध्याय प्रकाशित किया जाता है लेखक ने निश्चय किया है कि कम से कम प्रत्येक मास एक अध्याय इसी प्रकार निकली जावे। पहिले यजुर्वेद से ही प्रारम्भ किया है उसके समाप्त होने पर अथर्वेद तथा और दोनों वेदों का इसी प्रकार सुगमता के साथ प्रचार किया जावेगा। वैदिक धर्म्म के प्रेमियों से आशा है कि वे इस शुभ कार्य्य में लेखक का हाथ बटावेंगे।

२) पेशगी भेज देने से ग्राहकों में नाम लिख लिया जावेगा। पुस्तक डाक द्वारा प्रत्येक मास पहुंचती रहैगी। वी० पी० से मंगाने पर ८ प्रति से कम नहीं भेजी जायगी तिस पर वी. पी. मंगाने वालों से प्रार्थना है कि ।=) का टिकट अर्थात चौथाई मूल्य पेशगी भेज दें।

देवनारायण पाण्डेय
वेद प्रचार भवन
ग्वालटोली कानपुर।

पत्र व्यवहार करने का पता:-

श्रीमती राजकुमारी देवी।
C/o, देवनारायण पाण्डेय
वेद प्रचार भवन
ग्वालटोली-कानपुर।

प्रिंटर पं० राधामोहन बाजपेयी द्वारा पं० उमादत्त बाजपेयी के ब्राह्मण प्रेस-कानपुर में मुद्रित।